लाल तारा

लेखक के अन्य शब्दचित्र; कहानी; उपन्यास

माटी की मूरतें

गेहूँ और गुलाब

चित्ता के फुल

पतितों के देश में

कैदी की पत्नी

लाल तारा

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

लाल तारा

शहीद बैकुंठ शुक्ल को

जो स्वयं एक जाज्वल्यमान तारा था।

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

नये रूप में

'लाल तारा' मेरे शब्दचित्रों का पहला संग्रह है। इसका पहला रूप उस जमाने में निकला था, जब मैं सिर से पैर तक लाल-लाल था।

दूसरे संस्करण में इसका कुछ रूप बदला और अब तीसरे संस्करण में यह बिल्कुल नये रूप में पाठकों के हाथ में आ रहा है।

इसकी कुछ चीजें, जिनका गुलाबी रंग था, नई पुस्तकों में रख दी गई हैं, कुछ और चीजें इसमें जोड़ दी गई हैं, जो अन्यत्र संगृहीत थीं, किन्तु जो अपने अंगारे के-से रंग के कारण, इसीके लिए उपयुक्त जँचीं !

मेरे विचार से, अपने इस नये रूप में, यह अपने नाम को और भी सार्थक करता है।

'लाल तारा' एक नये प्रभात का प्रतीक था। वह प्रभात अब अधिक सन्निकट है। शायद इसीलिए अंधकार भी अधिक सघन हो चला है।

यह अंधकार छँटे, नये प्रभात का स्वर्णोदय हो, इसी कामना के साथ।

आश्विन की अमावस्या
१९५३

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

नये रूप में

'लाल तारा' मेरे शब्दचित्रों का पहला संग्रह है। इसका पहला रूप उस जमाने में निकला था, जब मैं सिर से पैर तक लाल-लाल था।

दूसरे संस्करण में इसका कुछ रूप बदला और अब तीसरे संस्करण में यह बिल्कुल नये रूप में पाठकों के हाथ में आ रहा है।

इसकी कुछ चीजें, जिनका गुलाबी रंग था, नई पुस्तकों में रख दी गई हैं, कुछ और चीजें इसमें जोड़ दी गई हैं, जो अन्यत्र संग्रहीत थीं, किन्तु जो अपने अंगारे के-से रंग के कारण, इसीके लिए उपयुक्त जँचीं!

मेरे विचार से, अपने इस नये रूप में, यह अपने नाम को और भी सार्थक करता है।

'लाल तारा' एक नये प्रभात का प्रतीक था। वह प्रभात अब अधिक सन्निकट है। शायद इसीलिए अंधकार भी अधिक सघन हो चला है।

यह अंधकार छँटे, नये प्रभात का स्वर्णोदय हो, इसी कामना के साथ।

आश्विन की अमावस्या
१९५३

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

लाल तारा

निविड़ अन्धकार और घने कुहासे के पर्दे को फाड़कर वह लाल तारा पूरब के क्षितिज पर जगमग-जगमग कर रहा था!

गरभू उठा। पूस का जाड़ा, पुआल की तहों की ऐंठ, इस आख़िरी रात को गरभू के कलेजे तक पहुँच चुका था। पहले दमा उठा, फिर गरभू।

गरभू उठा, झोंपड़ी के बाहर आया।

एक बार काँपते-काँपते उसने खलिहान को, चारों ओर नज़र दौड़ाकर, देखने की चेष्टा की। खलिहान—उसकी वर्ष भर की मेहनत जहाँ बोझों के अम्बार और अन्न की राश के रूप में पड़ी थी।

वर्ष भर की मेहनत—धान की सुनहली बालियों के रूप में। इस ने पर, जब कि वह सोया हुआ था, किसी चोर-छिपार की बुरी र न लगी हो!

देखने ही से संतोष नहीं हुआ। एक वार खलिहान के चारों ओर वह घूम आया।

फिर बटुवे से सुर्ती निकाली, चुनौटी से चूना। दो-चार वार कसके चुटकी लगाई और एक मीठी थपकी दी। अँधेरे में ही, स्पर्श के द्वारा, कुछ महीन सुर्ती अलग कर नाक में डाली, शेष मुँह में।

नाक से छींक आई, सिर का बोझ दूर हुआ। सुर्ती की एक पीक गले के नीचे उतारी, शरीर गरमा गया।

क्या वह सोये ?

उँह, यह भभूका---लाल तारा--उग चुका ! यह तो रामनाम की वेला है।

गरभू प्रभाती टेर रहा था--

'लाज मोरी राखहु हो ब्रिजराज !'

× × ×

यह लाल तारा !

गरभू के कितने सपनों का साथी है वह !

उसका वह बचपन !

लाल तारा देखते ही उसका बाप उसे उठा देता। गरभू उठता, आँखें मलता, बथान में जाता और तुरत की ब्याई उस गुजराती भैंस को खोलकर पसर चराने को निकल पड़ता।

कितनी ही चाँदनी रातों में दप-दप सुफेद साड़ी पहने चुड़ैलों ने उसे फुसलाया !

कितनी ही अँधेरी रातों को काले प्रेतों ने उसे डराया-धमकाया !

किन्तु गरभू जानता था, जब तक वह भैंस की पीठ पर है, उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। लक्ष्मी के निकट कहीं भूत-प्रेत आते हैं !

लोहा लगने पर वह लौटता। चारों ओर हरे-भरे खेत, ओस के मोतियों से लदे। उसकी अघाई भैंस झूमती, बच्चे के लिए चुकरती,

घर की ओर भागी आ रही। और, गरभू उसकी पीठ पर बैठा—उसे वह अनुभव होता, जो किसी इन्द्र को अपने ऐरावत की सवारी पर।

× × ×

जब वह जवान हुआ—

इस लाल तारे को केन्द्रित कर उसके कितने न स्वर्ण-जाल बने !

स्वर्ण-जाल? उतना ही कीमती, उतना ही रंगीन, किन्तु कितना क्षणिक !

सोने का जाल? या मकड़ी का जाल !

गरभू को वे दिन—नहीं, रातें—अब भी याद हैं। अपनी नवोढ़ा पत्नी के साथ, अपनी कुटिया में लेटे-लेटे, वह सारी रातें गपशप में बिता डालता। इतने में ही उसकी पूरब की छोटी खिड़की से यह लाल तारा उसके घर में झाँकने लगता।

'ऐ, भोर हो गई !' उसकी नवोढ़ा बोल उठती। इस आवाज में कितनी तड़प, कितनी चाह और कितनी आकुलता भरी होती !

वह सोचती—दिन आ रहा, उसके और उसके इस अलबेले के बीच एक कठोर अन्तराल खड़ा हो जायगा !

रूढ़ियों की दीवाल !—पत्थर की दीवाल से भी ठोस, कठोर, हृदयहीन !

दोनों आँगन में आते। देखते, परखते—हाँ, यह लाल तारा ही तो है? तब—

तब, एक बार हुलसकर लिपटते और विदा होते। एक दरवाजे की ओर—दूसरी, अपनी उस प्रणय-पर्ण-कुटीर की ओर।

उनकी आँखों में भी तारे चमकते—उजले-उजले, काली-काली बरौनियों की सघनता को भेदते, चाँदनी के स्पर्श से मोती-सी दिपते !

× × ×

और यह प्रभाती, यह गाना !

गाना—गरभू कितना गाना, कैसा अच्छा गाना? आज तो दो पदों के बाद ही उसका गला बैठा जा रहा है।

गरभू गाने के लिए बदनाम !

हाँ, गरभू गाने के कारण बदनाम भी हो चुका है। न उसके पास श्याम की बाँसुरी थी, न उसमें वह भुवन-मोहन रूप था; किन्तु उसके अटपटे गाने कितनी ही 'राधाओं' को उसके पास खींच लाते!

न यमुना, न वृन्दावन, न कदम्ब, न कुंज-कुटीर !

किन्तु तो भी इस गाँव के कितने ही स्थल हैं, जहाँ पर उसके प्रणय-चिन्ह अदृश्य कूचियों से अंकित हैं !–बाबुओं की अमराई, तालाब का कछार, सरसों के खेत, गाँव की अँधेरी गलियाँ !

वह गाते-गाते जगता, गाते-गाते सोता ! काम भी करता गाते-गाते ! कन्धे पर हल लिये खेत की ओर जा रहा है, गाते-गाते। हल चला रहा है, गाना हो रहा है और ताल टूटता है—बैल के पुट्ठे पर ! "चल बे पट्ठे"—बैल नाचने-से लगते, वह गाने लगता–

'आम की डाल कोयलिया कुहके,
वनवा में कुहके मोर;
मोरा अँगना में कुहके सोने की चिड़इया,
सुन हुलसे जिया मोर।'

'हाँ जो, सुन हुलसे जिया मोर !!'

गाते-गाते कभी परिहथ छोड़ कर वह नाचने भी लगता !

गाँव के लोग इस अलबेले हलवाहे पर फब्तियाँ कसते, उसके बाप से शिकायत करते। किन्तु बाप–

बाप कहता–जिस दिन से गरभू ने हल पकड़ा, उसके खेत सोना उगलते हैं, घर मोती सँजोते हैं।

टट्टी की जगह मिट्टी की दीवाल। फूस की जगह खपड़ैल का छाजन। उसके बाप के बदन पर सुफेद अँगोछा–माँ की देह पर कोरदार साड़ी !

और रंग-बिरंगी चूनर पहननेवाली तो पीछे आई !

पर आज ?

कहाँ गये बाप, कहाँ गई माँ ? अच्छा हुआ, ये दुर्दिन वे न देख सके !

मिट्टी की दीवाल की जड़ नोनी लगने से खोखली हो चुकी है, आज गिरे या कल ! खपड़ैल के बीच-बीच फूस है, ठीक उसी तरह, जैसे उसकी स्त्री की पुरानी चूनर में ननकिलाट के पैवन्द !

और, मानो गरभू आज उस बेचारी के ही शब्दों में गा रहा है—

'लाज मोरी राखहु हो ब्रिजराज !'

× × ×

गरभू का गला भर आया। गाया न गया। इस जाड़े में भी उसका शरीर पसीने-पसीने हो गया।

झोपड़ी से निकल वह खलिहान में घूमने लगा।

यह बोझों का अम्बार—यह अन्न की रास ?

क्या ये उसके घर जा सकेंगे ?

कितने गिद्धों की नजर न लगी होगी इनपर—मानो ये गरभू की मेहनत के नतीजा न हुए, कोई लावारिश लाश है।

जब तेजी थी, लगान बढ़ते-बढ़ते आसमान से जा लगी—अब मन्दी में भी वह वहीं लटकी है। वह क्यों उतरे ?

बकाया ! बकाया ! बकाया—साल-साल देते जाओ, देते जाओ, तो भी बकाया !

परिवार बढ़ा—आमदनी घटी। कर्ज। फिर सूद—और दरसूद। कितना दोगे ? और जिनसे अन्न लेकर खेती की, उनका ड्योढ़ा तो सबसे पहले चुकाना होगा।

इस अम्बार की एक-एक बाली का हिसाब लगा हुआ है, इस रास के एक-एक कण का जमा-खर्च बँधा हुआ है।

साल भर दिन-रात एक की। माघ का जाड़ा घुटनों में सिर छुपाकर काटा। जेठ की दुपहरिया कुदाल की छाया में गँवाई। भादो की रिमझिम कीचड़ में खड़ा-खड़ा, हँस-हँस, गुजार दी।

किन्तु जब फल खाने का वक्त हुआ, ये गिद्ध !

ये गिद्ध ?—हाँ, ये गिद्ध नहीं तो क्या हैं ? ये गिद्ध हैं—मास-खोर हैं। गिद्ध तो मुर्दार मास खाता है। ये गिद्ध के भी चचा हैं, जिन्दा मास खाते हैं।

उफ, मेरा बच्चा—कितनी तपस्या के बाद मिला बच्चा ! दिन-दिन सूखता जा रहा है। वह हँसता-खेलता बच्चा, क्या-से-क्या हो

गया ! दिन-रात बुखार, खाँसी। पहले कफ़ थूकता था, अब खून उगलता है।

और, उसकी वह बहिन—गरभू की इकलौती बेटी ! बेचारी की जवानी अकारथ बीती जाती है। पैसे नहीं कि उसका गौना करा दूँ। कैसी पीली पड़ती जा रही है।

मेरी······कहाँ गई उसकी चूनर ? बेचारी की लाज तक ठीक से नहीं ढँक पाती।

आज क्या यह मुनासिब नहीं था कि अपनी मेहनत की इस कमाई से अपनी सुख-दुख की साथिन की लाज ढँकता, अपनी बेटी की जवानी को बर्बाद होने से बचाता और—और अपने प्यारे बच्चे····

वैद्यजी कहते थे—वह अब भी बच सकता है।

किन्तु ये बचने देंगे ? बिना उसको खाये इनको चैन होगा ?

क्या बाबूसाहब को पैसे की कमी है ? क्या साहूजी का तोड़ा ज़रा भी खाली है ? फिर लगान-लगान, सूद-सूद की यह कैसी रट ?

नहीं, ये गिद्ध के चचा हैं—बिना ज़िन्दा मांस खाये...

गरभू काँपने लगा, गिर पड़ा।

पहले बड़बड़ाहट—फिर नाक की आवाज़—तब सन्नाटा।

और उधर—

निविड़ अन्धकार और घने कुहासे के पर्दे को फाड़कर वह लाल तारा पूरब के क्षितिज पर जगमग-जगमग कर रहा था !

हलवाहा

औंव-औंव—चलता चल, ओ मेरा जीवन-संगी, चलता चल !

न जाने, किस कुक्षण में मेरा-तेरा संग हुआ कि तूने मुझे आत्म-सात्-सा कर लिया है।

हाँ, मैं मनुष्य होकर भी आज बैल हो रहा हूँ।

स्वयं घास-पात पर गुज़र कर दूसरों के लिए पृथ्वी का कलेजा चीरना और उसके विविध रत्नों से उनका भण्डार भरना।

छड़ी-चाबुक खाते-खाते इतना अभ्यस्त हो गया हूँ कि अब सींग-पूँछ हिलाना भी छोड़ दिया है।—पूरा बछिये का ताऊ बन गया हूँ।

औंव-औंव—चलता चल, ओ मेरा जीवन-संगी ! चलता चल !

× × ×

गया ! दिन-रात बुखार, खाँसी। पहले कफ़ थूकता था, अब खून उगलता है।

और, उसकी वह बहिन—गरभू की इकलौती बेटी ! बेचारी की जवानी अकारथ बीती जाती है। पैसे नहीं कि उसका गौना करा दूँ। कैसी पीली पड़ती जा रही है।

मेरी······कहाँ गई उसकी चूनर ? बेचारी की लाज तक ठीक से नहीं ढँक पाती।

आज क्या यह मुनासिब नहीं था कि अपनी मेहनत की इस कमाई से अपनी सुख-दुख की साथिन की लाज ढँकता, अपनी बेटी की जवानी को बर्बाद होने से बचाता और—और अपने प्यारे बच्चे····

वैद्यजी कहते थे—वह अब भी बच सकता है।

किन्तु ये बचने देंगे ? बिना उसको खाये इनको चैन होगा ?

क्या बाबूसाहब को पैसे की कमी है ? क्या साहूजी का तोड़ा ज़रा भी खाली है ? फिर लगान-लगान, सूद-सूद की यह कैसी रट ?

नहीं, ये गिद्ध के चचा हैं—बिना ज़िन्दा मांस खाये...

गरभू काँपने लगा, गिर पड़ा।

पहले बड़बड़ाहट—फिर नाक की आवाज़—तब सन्नाटा।

और उधर—

निविड़ अन्धकार और घने कुहासे के पर्दे को फाड़कर वह लाल तारा पूरब के क्षितिज पर जगमग-जगमग कर रहा था !

हलवाहा

आँव-आँव—चलता चल, ओ मेरा जीवन-संगी, चलता चल !

न जाने, किस कुक्षण में मेरा-तेरा संग हुआ कि तूने मुझे आत्म-सात्-सा कर लिया है।

हाँ, मैं मनुष्य होकर भी आज बैल हो रहा हूँ।

स्वयं घास-पात पर गुज़र कर दूसरों के लिए पृथ्वी का कलेजा चीरता और उसके विविध रत्नों से उनका भण्डार भरता।

छड़ी-चाबुक खाते-खाते इतना अभ्यस्त हो गया हूँ कि अब सींग-पूँछ हिलाना भी छोड़ दिया है।—पूरा बछिये का ताऊ बन गया हूँ।

आँव-आँव—चलता चल, ओ मेरा जीवन-संगी ! चलता चल !

× × ×

जीवन-संगी !

हाँ, तू ही तो मेरे जीवन का सदा का साथी है।

भोर हुई, आकाश में लाली छाई, वाग में फूल चिटखे।

किन्तु मेरे भाग्याकाश को तो सदा अँधियाला रहना ही वदा है—मेरे वाग़ में वसन्त कहाँ ?

मैं उठा, मुँह-अँधारे, अभ्यास के सहारे, अँधेरे में ही जल्दी-जल्दी कुट्टी काटी, उसमें भूसा रखा और थोड़ी खल्ली के साथ तेरे निकट उसे रख दिया।

किरन छिटकी। मेरे कन्धे पर हल, तेरे कन्धे पर जूआ।

खेत पहुँचे। मेरे हाथ में 'परिहथ', तेरे कन्धे पर 'पालो' का बोझ।

तू आगे-आगे, मैं पीछे-पीछे।

आँव-आँव—चलता चल, ओ मेरा जीवन-संगी !

× × ×

मेरे शरीर से पसीना टपक रहा है—तेरे मुँह से सुफ़ेद झाग चू रहा है। उफ़ ! यह धूप है या अगिन-वान ?

वह ! वह कौन आ रही है ?

वही तो है।

मँड़ुए की एक रोटी, टिकोरे की थोड़ी चटनी, एक पूरा सूखा मिर्चा, थोड़ा-सा नमक, वस !

एक टुकड़ा तू भी खा ले, ओ मेरा जीवन-संगी ! अपने को तो सदा अधपेटा रहना ही है।

तिपहरिया—दोनों थके-माँदे; किन्तु मुझे तो तेरी खबर लेनी ही है।

आह ! यदि मेरा हलवाहा भी मेरी खबर इसी तरह लेता। वह तो दिन भर मुझे जोतता है और शाम को यह खबर भी नहीं लेता कि कभी मुझे भरपेट खाना भी मिला।

मैं इसकी चिन्ता करता हूँ—यह बेचारा अधपेटा रहेगा, तो फिर कल हल कैसे खींचेगा ? किसी उपाय से तेरा पेट भर ही देता हूँ।

किन्तु वह ?

वह दिन भर मुझे जोते रहता—बारह मास जोते रहता है; किन्तु एक बार भी ऐसा नहीं सोचता कि आखिर इस मनुष्य-रूपी बैल के भी पेट है या नहीं।

उल्टे, जब कभी संयोग से मेरे निकट 'हरी घास' देख पाता है, सरदार स्वयं हड़प जाता है।

खेत मेरा, खलिहान उसका, भूसा मेरा, अन्न उसका।

उफ़—ओह !

× × ×

चल ओ मेरा जीवन-संगी, जरा तेजी से चल !

सुना, द्वापर में भी एक हलधर था। हाँ, हलधर ही तो–मेरा सगा-सम्बन्धी !

एक बार वह बिगड़ा।

अपने हल की नोक, उसने, ज़मीन में कुछ गहरे धँसा दी, फिर, समूची पृथ्वी को, उस हल के बल खींचकर, समुद्र में डुबोने को वह उद्यत हुआ।

हाँ, वह हलधर था और अपने हल की नोक से समूची पृथ्वी को खींचकर समुद्र में डुबोने चला।

कहा जाता है, सब व्याकुल हो उठे। उसके पैरों पर गिरे। हलधर ही तो था—पसीज पड़ा बेचारा। पृथ्वी बच गई—बच गई उस-पर की सारी सृष्टि !

किन्तु, मैं नहीं पसीजूँगा, ओ मेरे जीवन-संगी !

ओ मेरे जीवन-संगी ! जरा तेजी से चल !

आज इस समूची पृथ्वी को, अपने हल की नोक से खींचकर, मैं समुद्र में डुबो दूँगा।

उड़ा

डुबोऊँगा,

×

आह रे,

यदि सचमु

जीवन-संगी,

पसीने से पृथ्वी

एक बार अपने खून

बना पाता।

आँसू तो बहुत बर

जीवन-संगी, तेरे ये दो

तेरी तरह पूंछ तो बहु

की अक़ल भी मुझे दे—ओ मेरे

आँव-आँव, चलता चल, चल

यह और वह

हजारीबाग रोड स्टेशन ! चार बाबू-कैदी वेटिंग रूम से निकल-कर प्लैटफार्म पर हवाखोरी कर रहे हैं।

दिनभर की कड़ी धूप के बाद यह शाम कैसी अच्छी मालूम हो रही है ! चारो ओर धूसर पहाड़ियाँ—दूर पर एक पहाड़ी को सुशो-भित करता पारसनाथ का वह मंदिर ! पश्चिम में सूर्य अपना बचा-खुचा सोना बाँटकर, हँसता हुआ, विश्रामागार को जा रहा है। पूरब में चतुर्दशी का चाँद अपना चाँदी का थैला लिये, मानो दान के उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में है—भला इस गोधूलि वेला में भी कोई पुण्य कर्म किया जाता है ?

रह-रहकर हवा का एक शीतल झोंका दिन भर की गर्मी को भुलाने की चेष्टा करता हुआ सन्-सन् करके निकल जाता है।

कि इतने में ही एक यात्रि-ट्रेन प्लैटफार्म आ लगती है।

वह पृथ्वी रहकर क्या होगी, जहाँ मनुष्य बैल बन जाता है ? जहाँ उस बैल को दिन-रात खटाया जाता है, किन्तु चारा भी नहीं दिया जाता ?

जहाँ वह भूखों मरता है जो पैदा करता है। जहाँ वह मौज उड़ाता है, जो अजगर-सा बैठा रहता है।

जीवन-संगी ! तेज़ी से चल। इस पृथ्वी को समुद्र में डुबोऊँगा, चलता चल, तेज़ी से चल ! आँव-आँव !

× × ×

आह रे, हलवाहे का हृदय !

यदि सचमुच एक बार वह कठोर हो पाता।

जीवन-संगी, यदि सचमुच मैं कठोर हो पाता !

पसीने से पृथ्वी को मुलायम और ज़रखेज़ बनाने के बदले एक बार अपने खून की खाद से इसे सींचता और उर्वर बना पाता।

आँसू तो बहुत बरसाये—एक बार चिनगारियाँ चमका पाता।

जीवन-संगी, तेरे ये दो सींग मेरे मस्तक पर उग आते।

तेरी तरह पूँछ तो बहुत हिलाई। अब ज़रा सींग फटकारने की अक़ल भी मुझे दे—ओ मेरे जीवन-संगी !

आँव-आँव, चलता चल, चलता चल......

यह और वह

हजारीवाग रोड स्टेशन ! चार वाबू-कैदी वेटिंग रूम से निकल-कर प्लैटफार्म पर हवाखोरी कर रहे हैं।

दिनभर की कडी धूप के वाद यह शाम कैसी अच्छी मालूम हो रही है ! चारो ओर धूसर पहाडियाँ—दूर पर एक पहाडी को सुशो-भित करता पारसनाथ का वह मदिर ! पश्चिम में सूर्य अपना वचा-खुचा सोना बाँटकर, हँसता हुआ, विश्रामागार को जा रहा है। पूरब मे चतुर्दशी का चाँद अपना चाँदी का थैला लिये, मानो दान के उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में है—भला इस गोधूलि वेला में भी कोई पुण्य कर्म किया जाता है ?

रह-रहकर हवा का एक शीतल झोका दिन भर की गर्मी को भुलाने की चेष्टा करता हुआ सन्-सन् करके निकल जाता है।

कि इतने में ही एक वालिस-ट्रेन प्लैटफार्म आ लगती है।

खुले डब्बों की एक लम्बी कतार! डब्बों में गिट्टियाँ भरीं। गिट्टियों पर कुछ आदमी बैठे, अपने हथौड़े चलाये जा रहे हैं। कुछ लोहे के चूल्हे में कोयला रख उसे धधकाने की चेष्टा में हैं—धुआँ-धुआँ हो रहा है! कुछ गिट्टियों पर पड़े, पत्थर का तकिया किये, सोये हुए हैं, उनकी नाक की 'सर-सों' आवाज़ साफ सुनाई पड़ती है। उनके सिरहाने अध-सूखे पत्तोंवाली डाल हिकमत से खड़ी की हुई है। मालूम होता है, कुछ पहले धूप से बचाव के लिए उन्होंने यह तरकीव की थी। कुछ खड़े होकर स्टेशन की ओर देख रहे हैं। उनमें से कुछ के ध्यान को तो इन वावू क़ैदियों की ओर जाना ही था।

यह ववुआना वेश और पुलिस की निगरानी में!

एक अपने डब्बे से कूदकर वावू क़ैदियों के नज़दीक आता है—शायद इस अजीवो-ग़रीव जानवर की अच्छी तरह पहचान रखने के लिए!

'तुम्हें कितनी मजदूरी मिलती है, भाई?'

'भाई'—वह पूछनेवाले वावू-क़ैदी को सिर से पाँव तक देखता है! 'भाई'—इस अपरिचित शब्दों से जैसे वह घवड़ा जाता है। उसे जिन शब्दों से आज तक वावुओं ने पुकारा, उनमें यह शब्द तो नहीं था!

'मैं तुम्हींसे पूछता हूँ दोस्त। वोलते क्यों नही?'

पहले भाई, अव दोस्त। हिचकिचाते हुए उसने कहा—"चार आने।'

'और, काम कव से कव तक करते हो?'

इस फिज़ूल सवाल का क्या अर्थ?—उसकी घवराहट वढ़ती मालूम होती है।

'यही—भोर से शाम तक।'

दिनभर में छुट्टी नहीं मिलती?'

'वीच में खाने के लिए एक घंटे की।'

'अच्छा, तुम्हारे घर में कितने आदमी हैं?'

'पाँच—मा, मैं, मेरी स्त्री, दो वच्चे।'

'दो बच्चे ?'

'जी हाँ।'

'बाप मर चुके ?'

उसने सिर हिलाकर 'हाँ' भरी।

'चार आने में पाँच प्राणियों की गुजर कैसे चलती है ?'

अब तो उसकी घबराहट अन्तिम छोर पर पहुँच चुकी थी, लेकिन इसी समय इंजिन ने सिटी दी—वह दौड़ता हुआ अपने डब्बे में चढ़ गया। ट्रेन चल दी। उस धुँधले प्रकाश में बाबू-कैदी ने देखा, वह दोनों हाथ मस्तक से सटाये उन्हें अभिवादन कर रहा है।

× × ×

'जरा स्नान क्यों न कर लिया जाय'—एक बाबू-कैदी ने अपने दूसरे साथी से, रेल के स्टेशन पर बड़ी तेजी से चलते हुए पानी के के नल को देखकर, कहा।

सर-सर-सर—नल का पानी उनके सिर पर गिर रहा है; लेकिन उनका दिमाग़ तो अभी तक ठंडा नहीं होता—साफ नहीं होता। खड़-खड़-खड़-खड़ करती हुई वह वालिस-ट्रेन उनके दिमाग में कुहराम मचाये हुई है। वालिस-ट्रेन पर चलता हुआ वह हथौड़ा मानो उनके मस्तक पर तड़ातड़ पड़ रहा हो और जलता हुआ वह चूल्हा उनके अन्तर में भट्ठी फूँक रहा हो। गिट्टी पर पत्थर का तकिया लगाये सोये हुए उस मजदूर की नाक से निकली आवाज सायँ-सायँ कर उसमें भाथी चला रही है और सबसे बढ़कर उस नौजवान की आकृति, उसकी चार आने मजदूरी, फिर पाँच प्राणियों की गुजर और अन्त में उसका वह प्रेम-पूर्ण अभिवादन! एक साथ ही—धू-धू हू-हू! चिता भी जल रही है, तूफान भी चल रहा है। भला ऐसे दिमाग को पानी के ये फुहारे क्या फायदा पहुँचा सकते थे ?

इसी समय प्लेटफार्म के नीचे, शंटिंग की लाइन पर, रेल का एक डब्बा जगमगा उठा।

उस जगमग में उसके भीतर के दृश्य साफ नजर आ रहे हैं।

एक सज्जन—नहीं, वह 'साहब' कहलाना ज्यादा पसंद करेंगे—तो, एक साहब कुर्सी पर बैठे हैं। तुरत-तुरत गुस्ल-खाने से निकले

हैं। बिजली की रोशनी में उनके भींगे केश पर की बूंदें कैसी चमक रही हैं, जैसे हरी घास पर ओस के कण, जिन्हें सूर्य-किरणों ने रंग-बिरंगा बना दिया हो। बड़े आईने के सामने, सोफियाने ब्रश से, अपने बाल को सम्हाल रहे हैं। किंतु बिजली-पंखे की हवा से उड़-उड़ कर वे मुलायम बाल बार-बार उनके चेहरे पर लटक आते हैं। मालूम होता है, बालों का कौतुक उन्हें भी पसंद है—बार-बार ब्रश फेरते और बीच-बीच में ठहर-ठहरकर उनके बिखरने की प्रतीक्षा करते हैं। फिर, कुछ उजली-उजली, मक्खन-सी चीज़ निकालकर चेहरे पर मलते हैं। कमीज़ पर कालर और नेक्टाई बाँधते हैं—ऊपर से कोट डालते हैं। तब एक बार गर्व से आईने में देखते हैं। उनकी असल और नक़ल दोनों सूरतें—यहाँ, इस नल पर से, साफ़-साफ़ दिखाई पड़ रही हैं।

इतने ही में खानसामा पहुँचता है। हाथों में ट्रे है और चेहरे पर एक दहशत। टेबिल पर ट्रे रख देता है। ट्रे के ऊपर से सुफेद कपड़े को हटा कर एक बार साहब सरसरी नज़र से सब चीज़ों को देखते हैं—फिर, भौं कुछ टेढ़ी करके खानसामे की ओर ताकते हैं। पचास गज़ के फासले से भी उस बिजली की रोशनी में, खानसामे पर जो आतंक छाया, उसका पता साफ़-साफ़ चल रहा है। एक घुड़की—उसका पीछा हटना। फिर ट्रे की कुछ चीज़ों का उठाना—दृश्यपथ से ग़ायब होना। कुछ देर के बाद लौटना, कुछ लिये-दिये।

काँटे-छुरे चमक रहे हैं। बीच-बीच में छोटी-छोटी प्याली में कुछ रंगीन तरल पदार्थ कंठ से नीचे उतारा जा रहा है।

नहाने वाला बाबू उद्विग्न हो उठता है, जैसे आँख मूंद कर वहाँ से चल देता है। वेटिंग रूम में आता है।

'यह कौन साहब है ?'

'उस सैलून में ?'

'हाँ।'

'रेलवे के कन्ट्रैक्टर है—अबरख का भी आपका बड़ा कारबार है।' इतने में—'लारी आ गई, चलिए' की पुकार।

लारी की अगली सीट पर चारों बाबू-क़ैदी बैठे हैं; दारोग़ाजी ड्राइवर की बग़ल में—चारों सिपाही पिछली बेंच पर।

आधी रात का सन्नाटा—उस पहाड़ी प्रदेश में यह लारी चली जा रही है।

सड़क के दोनों ओर हरे-हरे दरख्त—दूर क्षितिज की गोद में सिर रखकर सोई-सी पहाड़ियाँ—चाँदनी, समूची दुनिया मानो तरल चाँदी में स्नान कर रही हो! ठंडी पहाड़ी हवा मन-प्राण को जुड़ा रही है।

लेकिन उस समय भी एक का दिमाग इस तरह व्याकुल है, जैसे चिलचिलाती धूप में, जल से बाहर रख दी गई, मछली! वहाँ द्वंद्व मचा हुआ है–

यह हैं कन्ट्रैक्टर—रेलवे कन्ट्रैक्टर—रेलवे की लाइनें बनाने, सुरंगों का काम—पुल, स्टेशन भी बनवाते होंगे।

वह खालिस ट्रेन, ये कुली—इन्हींकी मातहती में ये बेचारे काम करते होंगे।

यह कन्ट्रैक्टर साहब! यह कौन-सा काम करते हैं? देखभाल? —झूठी बात—देखभाल तो इनके दूसरे नौकर करते होंगे, जिन्हें हम ओवरसियर कहें, इंजीनियर कहें।

तब ?

तब इनके रुपये हैं, उन रुपयों से इन मजदूरों को—नहीं, तो उनकी मजदूरी को ही कह लीजिए—खरीदते हैं—उनसे मनमाने काम लेते हैं। और, उनके काम पर मनमाने दाम वसूल करते हैं।

यों मेहनत किसीकी, नफा किसीका!

और, अवरज का कारबार होता है?—क्या कारबार? ऐसा ही...या कोई खान होगी हजरत की।—कुछ कुली, कुछ कारीगर मरते होंगे और उनका यह श्राद्ध रचा रहे हैं?

लेकिन, एक बात तो सोचनी होगी ही—आखिर रुपये के लिए कुछ तो मिलना ही चाहिए।

लेकिन यह रुपया आया कैसे? इसी तरह कभी-न-कभी किसीको मूड़कर आया होगा। नफे के रूप में नहीं सही, किराये के रूप में, सूद के रूप में, मालगुजारी के रूप में।

तमाशा है, जो मेहनत करे, वह उस वालिस-ट्रेन में...

और जो......जो.....

दारोग़ाजी अचानक बोल उठते हैं, 'वाह हजारीबाग़ की आव-हवा भी इस गर्मी में क्या चीज़ है, न्यामत ही समझिए'--उन्होंने पीछे की ओर देखा ।

वह मानों, इन बाबू-क़ैदियों पर सहानुभूति और धैर्य की एक साथ वर्षा करना चाहते थे। इन भलेमानसों पर उन्हें थोड़ा रहम तो ज़रूर आता होगा, जो इतना पढ़-लिखकर इस तरह बार-बार जेलों में जाने के कारनामे करते रहते हैं। पागलों पर भी तो रहम होता ही है।

किन्तु, अफसोस—उनके इस तरह सहानुभूति-प्रदर्शन, इस धैर्य-दान पर दाद कौन दे ? बाबू-क़ैदियों में से तीन की आँखें बन्द थीं—न जाने, वे किस स्वप्नलोक में विचर रहे थे ?

और, चौथा जगा था ज़रूर ! लेकिन उसके कान, उसकी आँखें, उसकी सभी इन्द्रियाँ, जानें., कहाँ कहाँ थीं ?

अपने विचार-सूत्र को जारी रखते हुए वह बड़बड़ा उठा—

'और इतने पर भी लोग कहते हैं, तुम क्या समाजवाद, समाज-वाद चिल्ला रहे हो !'

हँसिया और हथौड़ा

सर्, सर्, झिन्-झिन्—पके धान की सुनहली बालियों के संचय में लगी है, हँसिया !

खट्-खट्, धड़ाम-धड़ाम—तपे हुए लाल लोहे पर बरस रहा है, हथौड़ा !

चमचमाती देह, पतली कमर,—हँसिया नाजनी-सी इठला रही है !

मुस्तंड बदन, घन-गर्जन—हथौड़ा तो औद्धत्य का अवतार ठहरा।

एक दिन दोनों में नोक-झोंक हो रही थी—

'मैं संचय की रानी, विश्व की अन्नदात्री, सदा हँसती, हमेशा इठलाती—देखो मेरी इन बालियों को।'—वह ज़ोरों से हँस रही थी !

'मैं सभी उद्योगों का जनक, दुनिया को सभ्यता मैंने दी। नहीं मानोगी ? तो......।'—वह आँखें गुरेड़ रहा था !

"मेरी दुबली देह पर मत जाओ—पतलापन काट करने की ताक़त का सूचक भी होता है; और दुनिया जानती है, बड़ा कौन—धार या प्रहार ?"

'मैं अबला से मुँह नहीं लगाता !'—क्या हथौड़ा के पास कोई जवाब नही था ?

× × ×

हँसिया-हथौड़ा ! शक्ति और कर्तृत्व के ये दो प्रतीक हैं !

कृषि और उद्योग के !

प्रकृति और पुरुष के !

संसार-रथ इन्हीं दो पहियों पर बढ़ा जा रहा है। हाँ, दोनों पहियों पर—

एक पहिया भी गिर जाय, तो यह रथ एक पग बढ़ने का नहीं ! हँसिया-हथौड़ा संसार-रथ के ये दो पहिये हैं।

× × ×

हँसिया रो रही थी !

हथौड़ा उदास बैठा था !

'क्यों, बहना ?'

"यह कबतक बर्दाश्त किया जा सकेगा ?"

'मैं भी तो यही जानना चाहती हूँ।'

'उफ ! कहाँ है तुम्हारी वह चमक—वह हँसी ?'

'तुम्हारी मांसल भुजाएँ भी क्या भूलने की चीज़ है ? और, वह मस्तानापन !'

'उठो बहन !'

'बढ़ो भाई !'

दोनों बढ़ रहे थे—

'दुनिया को दिखा दूँगी, मैं सचय की ही देवी नहीं, संहार की धात्री भी हूँ।'

'निर्माण का कार्य हमसे खूब लिया गया, दुनिया अब ज़रा हमारा प्रहार भी देखे !'

'बढ़े चलो, भैया !'

'हाथ बँटाओ, बहिनी !'
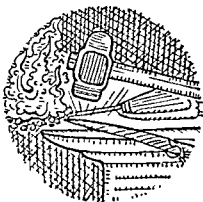
कुदाल

आज उसने कुदाल उठाई है।

पैर के अँगूठे ज़मीन को चापे हुए हैं। दबे उच्छ्वासों से छाती फूल उठी है। हाथ की नसों में तनाव है। तमतमाये चेहरे पर कुदाल की चमचमाती धार की परिछाई कौंध रही है।

यह तेज़ धूप ! ये लू की लपटें ! गर्मी की दुपहरिया का यह सन्नाटे का आलम। दिशायें थर्राहट में। निरानन्द-निस्पन्द नील आकाश में कभी-कभी चील की चीख।

इस फिज़ा में उसने आज फिर अपनी कुदाल उठाई है। पृथ्वी का वज्र-हृदय उसके प्रहार के पहले ही सिहर कर टूक-टूक होना चाहता है। खेत की झुलसी तृण-राजि थरथर कांप रही है। किन्तु, क्या इसके प्रहार का लक्ष्य ये तुच्छ तृण-पुंज हैं ?

× × ×

आज वह रत्नगर्भा की छाती छेदकर जिस रत्न को अतल से निकालना चाहता है।

समुद्र को मथा देवों और दानवों ने। तरल समुद्र; मन्दर के समान मथानी, शेषनाग-सी रज्जु। आज यह मनु का बेटा ठोस मिट्टी को अकेले मथने की तैयारी में है ! मथने ?—नहीं भस्म उड़ाने !

देवों-दानवों ने जल-तल के सभी रत्न प्राप्त कर लिये—उच्चैः-श्रवा, ऐरावत, लक्ष्मी, अमृत !

थल-तल के अछूते रत्न आज पहली बार सृष्टि का प्रकाश देखेंगे।

उसके पसीने की बूँदों की तरह ये रत्न जगमगा उठेंगे—चकमक, झलमल।

आज उसने इसलिए इस फिजा में कुदाल उठाई है !

× × ×

क्या कहा ?—कहीं दूसरा गरल निकला तो ?

छि—गरल क्या बिगाड़ेगा इसका ? देखते नहीं, इसके शरीर का काला रंग। कोई समुद्र का गरल पीकर नीलकंठ हुआ—यह पृथ्वी का सारा ताप-दाप पीकर नखशिख नीलवर्ण है।

विश्वास रखो, गरल के लिए भी यह किसी शंकर की शरण में नहीं गिड़गिड़ायगा !

यह डरपोक देवता नहीं, मनु का मर्दाना बेटा है।

डुगडुगी

(एकांकी नाटक)

पात्र

१-बूढ़ा सुक्कन भगत

२-उसकी बेटी सोना रानी

३-उसकी पत्नी

४-ज़मींदार का तहसीलदार

५-तहसीलदार का नौकर, जेठरैयत आदि

पहला दृश्य

(फूस के एक मकान का बाहरी बरामदा। टूटी खाट पर नीचे पैर लटकाये, एक बूढ़ा हुक्का पी रहा है। चेहरे पर झुर्रियों का अड्डा,

जिसपर गर्द की एक परत पसीने से कीचड़ बनी। खाली बदन, कमर में एक फटी धोती। तावड़तोड़ हुक्के का कश खींचता और बीच-बीच में खाँस उठता है। ज़मीन की ओर निगाह; ध्यानमग्न !

आँगन से एक लड़की निकलती है। हाथ में पानीभरा लोटा। चौदह-पन्द्रह बरस की साँवली सुन्दरी, एक फटी चूनर, फटी चूनर के भीतर मसकी चोली, जिसके अन्दर से उसकी जवानी की किरणें बरबस झाँक रही। वह पानी लेकर बूढ़े के पैरों से जरा हटा कर रख देती और एक ओर खड़ी हो जाती है। बूढ़े ने, मानो, न लोटे को देखा, न लड़की को। वह हुक्का पिये जा रहा है। कुछ देर बाद—)

लड़की—बाबूजी ! (बूढ़ा ध्यान नहीं देता—कुछ देर ठहरकर फिर कहती है।) बाबूजी ! (फिर भी बूढ़े का ध्यान नहीं टूटता—अब ज़रा आवाज़ तीखी करके) बाबूजी, मैं क्या कह रही.. !

बूढ़ा-(नज़र उठा कर एक बार लड़की को पैर से सिर तक देखता है। फिर मुस्कुराने की चेष्टा करता हुआ) क्या बेटी—!

लड़की—मैं कह रही हूँ, पैर धोइए, चलिए, खाइए।

बूढ़ा—पैर धो लेता हूँ—क्यों न धोलूँ ? मेरी सोना रानी कहती है और न धोऊँ ? लेकिन, बेटी, भूख तो नहीं है !

लड़की—भूख नहीं है ? तिपहरिया आई और भूख नहीं है ? बिना अन्न दाना के दिनभर कुदाल चलाते रहे और भूख नहीं है ?

बूढ़ा—कुदाल चलाता रहा ! ठीक तो, कुदाल चलाता रहा, किन्तु न चलाने से कैसे बनेगा, बेटी ! मेरी ऐसी ही अच्छी तकदीर रहती, तो तू बेटा न होती ?

(लड़की उदास हो जाती है, उसकी नजर अपने पैर के अँगूठे पर चली जाती है। बूढ़ा भी अन्यमनस्क हो फिर हुक्का का कश खींचने और खाँसने लगता है। इसी समय एक अधवयस स्त्री भीतर से आती है। ननकिलाट की मैली साड़ी, फटी। चोली नहीं—साड़ी में ही देह को लपेटे-सी। बाल अस्त-व्यस्त। आते ही कहती है)

स्त्री—यह क्या तुम्हारी आदत है ? जब तब मेरी सोना को उदास कर देते हो—तू बेटा न हुई, तू बेटा न हुई। क्या बेटा होना उसके हाथ की बात थी ?

(बूढ़ा जैसे अपनी ग़लती महसूस करके उठता है, सोना के निकट पहुँचता है। उसकी ठुड्डी को ऊपर उठाता, गद्-गद् कंठ से बोलता है)

बूढ़ा—तू सचमुच उदास हो गई, मेरी रानी बेटी ! माफ करना सोना, बूढ़ा हुआ, ज़बान से अंट-संट निकल आती है। मेरे अँधेरे जीवन की तू ही एक रोशनी है ! यदि तू ही नाराज़ हो गई, तो मैं कहाँ का रहूँगा, मेरी बिटिया !

(लड़की कुछ नहीं बोलती—धीरे से मुँड़, आँचल से आँखें पोछती, घर के अन्दर चली जाती है)

स्त्री—आखिर तुमने मेरी सोना को रुलाकर ही छोड़ा !

बूढ़ा—(दयनीय आकृति कर गिड़गिड़ाते हुए कहता है) हाँ, सोना रानी रो पड़ी। मैंने ही रुलाया ! लेकिन मैं कहूँ, तुम्हें विश्वास होगा—मैं तो दिनरात रोता रहता हूँ ?

स्त्री—विश्वास की क्या बात, मैं अंधी हूँ क्या ? लेकिन, देखो, दिन-रात के इस रोने से क्या फायदा ? अब जो विधना ने दिया, उसे तो हँसी-खुशी भुगतना ही है !

बूढ़ा—रोने से क्या फायदा ? मैं भी देख रहा हूँ, रोने से क्या फायदा होता है ? और सब गया था, आँखों की नूर बची थी, वह भी जा रही है। अब अच्छी तरह दिखाई भी नहीं पड़ता। लेकिन करूँ क्या ? बिना रोये रहा भी तो नहीं जाता, सोना की अम्मा !

स्त्री—करना क्या है ? धीरज धरना है।

बूढ़ा—धीरज ? धीरज धरना है ? धीरज धरूँ ? देखो, इस घर को—तीन साल से छाजन में एक तिनका नहीं रखा। पहले साल पानी से बचाव नहीं हुआ; दूसरे साल जाड़े से और अब धूप से भी बचना मुश्किल ! दीवारें ढह रहीं, बाँस तक सड़ गये। देखो, इस बाहरी आँगन को। अब तक खूँटों के ये निशान मौजूद हैं। यहाँ जोड़ा बैल बँधते थे, उस जगह वह कामधेनु बँधती थी, उस नाद के निकट वह भैंस—नब्बे रुपये में खरीदा था उसे, याद है न ? (एक लम्बी उसाँस लेकर) कहती हो, धीरज रखो। और-तो-और, कहाँ से धीरज लाकर तुम्हें इस रूप में देख सकूँ—तुम्हें और अपनी सोना-रानी को। बुढ़ापे में कितने देव-पित्तर पूजने के बाद एक बेटी मिली। उसके

शरीर पर एक गहना दे सका ? कभी एक अच्छी साड़ी पिन्हाई ? और, अब तो उसे किसी योग्य हाथों सौंपने का बन्दोबस्त चाहिए ? किन्तु, बन्दोबस्त का भी कोई सरोसजाम है ? धीरज धर्म—कहाँ से धीरज लाऊँ ?

(बूढ़ा शोक-उत्तेजना में खाट पर ढह पड़ता है और कमर से धोती का फेंटा खोल उसमें मुँह ढांक लेता है। स्त्री कुछ देर चुपचाप खड़ी रहती है। फिर, खाट के निकट जा बैठती और धोती के फेंटे को उसके मुँह से हटाती हुई कहती है—)

स्त्री—तुम फिर रोने लगे ? बताओ, ऐसा करोगे, तो हमारी क्या गत होगी ? एक तो बुढ़ापे का शरीर—फिर, यह रोना-धोना। कितने दिन चलेगा यह ? और, तुम न रहे, तो हम कहाँ ?—सोना को ही कौन पूछेगा ?

(इसी समय ज़मीन्दार का एक सिपाही दरवाज़े पर आता और अपनी वज़नी लाठी ठाँय से पटकता है। आवाज सुनकर स्त्री उस ओर चौंक कर देखती, अस्तव्यस्त हो उठती और ठिठक कर दरवाज़े से लग कर खड़ी हो जाती है। बूढ़ा उठकर बैठता है। सिपाही के पैर में उठी हुई नोक का भयंकर चमरौधा जूता है। घुटने से जरा ही नीचे लटकती मोटी धोती। बादामी रंग का कुर्ता और सिर पर लाल पगड़ी। लाठी अपनी कद से एक फुट ऊँची, पोर-पोर लोहे से बँधी—नीचे ऊपर लोहे के गुल्म।)

सिपाही—सुक्कन भगत, कचहरी में बुलाहट है।

(बूढ़ा उठता है—अपनी कमर से कुछ निकालता हुआ उसकी ओर बढ़ता है। झुककर सलाम करता है और धीरे से उसकी मुट्ठी में थम्हाकर हाथ जोड़ कर बोलता है)

बूढ़ा—सिपाही जी, बस, दस दिन की और मुहलत दो, बड़ी मिहरबानी होगी, धरम होगा।

(सिपाही हाथ झाड़ देता है—एक छोटी-सी चमकीली चीज अलग गिर पड़ती है।)

सिपाही—भगत, यह न होगा। बहुत मिहरबानी कर चुका। अब मेरे बूते के बाहर की बात है। तुम्हारी अठन्नी पर मैं अपनी नौकरी नहीं खोऊँगा। खुद तहसीलदार साहब आये हैं, तहसीलदार साहब—

बूढ़ा–तसीलदार साहेब, आयँ, तसीलदार...!

(सिपाही तमककर चल देता है—गुर्राती आँखों से बूढे को देखता हुआ; बूढ़ा कुछ देर तक निस्तब्ध खड़ा रहता है, फिर खाट पर ढह पड़ता है।)

दूसरा दृश्य

(ज़मीन्दार की कचहरी—एक अच्छा खासा वँगला। लोगों की भीड़। एक कुर्सी पर नौजवान तहसीलदार साहब साहवी ठाट में वैठे, सिगरेट का धुआँ उड़ा रहे। साहवी ठाट—जो देहात में किसी अर्द्धशिक्षित के पाले पड़कर अजीव रूप धारण कर लेता है। हैट है, कालर है, टाई है, कोट है, पैंट है, मोजे हैं; वूट हैं—किन्तु सव भोंड़े ! हाँ, देहातियों पर रोव जमाने के लिए काफी। सामने के टेविल पर इधर-उधर विखरे रुपये—जो सलामी में चढ़ाये गये हैं। कुछ हटकर एक चौकी पर पटवारी वैठा—वहियों का एक दफ्तर-सा फैलाये। बेचारा कुछ लिखता जा रहा है—बूढ़ा है वह, आँखों पर चश्मा, जो एक तरफ का फ्रेम टूट जाने से तागे के द्वारा कान से वँधा। गोड़ाइत, जेठरैयत, सिपाही तथा किसानों के समूह इधर-उधर वैठे-खड़े। बूढ़ा सुक्कन भगत तहसीलदार साहव के सामने हाथ जोड़कर खड़ा–)

बूढ़ा–दोहाई माँ-वाप की, मैं वहाना नहीं करता...

तहसीलदार–वहाना नहीं, तो यह क्या है ? एकाध वरस की वात हो, तो टाली भी जाय–मुंशीजी वतला रहे हैं, आज चार वर्षों से तुम मालगुज़ारी नहीं अदा कर रहे हो ?

बूढ़ा–हुजूर, हर साल देता हूँ; किन्तु पूरी अदाई नहीं हो पाती है। कोशिश करके भी नहीं हो पाती है !

तहसीलदार—क्यों नहीं हो पाती है ? सवकी हो पाती है, तुम्हारी क्यों नहीं होती !

बूढ़ा–सवकी हालत कैसे वताऊँ, हुजूर ! अपनी जानता हूँ। इधर चार-पाँच वर्षों से खेत ने मानों फसल देने से इन्कार कर दिया है। खेत वेचारा क्या करे ? कभी 'मघा' की वाढ़ से तवाही होती, तो कभी 'हथिया' ही नहीं वरसता। भदई-रव्वी भी खुलकर नहीं आती। कुल मिलाकर इतनी उपज भी नहीं होती कि खेती का खर्च ठीक से

निकले। घर के खर्च और दूसरे खर्चों की तो बात अलग । कर्ज से डूबा हूँ, तकाजों के मारे नाकोंदम है। इतने यहाँ पंच हैं, पटवारी जी से ही पूछिए, मुक्कन ने कभी किसीका तकाजा सहा ? लेकिन, तकदीर जो न कराये, सरकार !

तहसीलदार—मैं तुम्हारी तकदीर की कहानी सुनने नहीं आया, मुक्कन ! उपज नहीं होती तो कर्ज ले, बैल-गोरू बेच, गहनें बेंच, खेत बेंच—जो भी बेंच सको, बेंचो ! किन्तु रुपये दो। नहीं तो, नालिश होगी, नीलाम होगा। तब तुम जानो, तुम्हारा काम जाने !

बूढ़ा—हुजूर का हुकुम सिर-आँखों पर—मैं कर्ज लेने को तैयार हूँ कोई दे, तो। और गोरू और गहने ? उन्हें कब न बेंच चुका सरकार ! रह गया है सिर्फ बाप-दादे का चार बीघा खेत। सो, सोचता हूँ, मैं कौन होता हूँ उसका बेंचनेवाला !

(इसी समय एक जेठरैयत तहसीलदार के निकट पहुँचता है और उसके कान में कुछ फुसफुसाता है। तहसीलदार प्रसन्न होकर कहता है—)

तहसीलदार—ठीक तो, बाप-दादे की चीज़ क्यों बेंचो, अपनी ही चीज जब है, तब ..

बूढ़ा (आश्चर्य मुद्रा से)—मेरे पास अब बेंचने को क्या चीज़ बची है ? जेठरैयतजी, सरकार को आपने क्या कहा ? बताइये न, वह क्या चीज है ?

(जेठरैयत खीसें निपोड़ देता है—तहसीलदार ठहाका मारकर हँसता है।)

तहसीलदार—भगत, तब न तुम्हे बाप-दादे की चीज पर इतनी ममता है। ठीक भी तो, साँप भी मरे, लाठी भी बची रहे।

बूढ़ा—दुहाई सरकार, गरीब को भूलभुलैये में मत रखिए—आपका क्या मतलब है ?

तहसीलदार—अच्छा भगत, जरा नजदीक आओ।

(बूढ़ा काँपता-काँपता तहसीलदार के नजदीक जाता है। तहसीलदार मुस्कुराता, उसके कानों में फुसफुसाता है, मुक्कन चौंक उठता है।)

बूढ़ा—हुजूर, मुझे उमीद न थी कि कचहरी में बुलाकर मुझे इस तरह बेइज्जत किया जायगा।

(उसकी आँखों में आँसू डबडबा आते हैं। तहसीलदार आग-बबूला होकर चिल्ला उठता है—)

तहसीलदार—हैं, बड़ा इज्जतवाला बना है ! यही इज्जत थी, तो इतनी बड़ी हुई, शादी क्यों न कर दी ? तुम्हारे ऐसे हजारों ने बेटी बेची है। फिर मेरा नौकर—अबे बूड्ढे, देख तो ऐसा वर भी कहीं मिलेगा ? भगेलू, ओ भगेलुआ ! कहाँ गया साला ?

(एक अठारह-बीस वर्ष का नौजवान हुजूर-हुजूर कहता दौड़ा आता है। शोहदे-सा उसका चेहरा। बड़े-बड़े बाल चेहरे पर लटक रहे। गले में सोने की चार-पाँच ताबीजें। एक चुस्त रंगीन बनियाइन पहने। आकर तहसीलदार साहब के सामने खड़ा हो जाता है।)

तहसीलदार—देख तो, इसके पैर का रूप भी तुम्हारी बेटी में मिलेगा ? मैंने तो उपकार करना चाहा—तीन सौ रुपये कोई छोटी रक़म नहीं होती बुड्ढे—कभी एक साथ देखा होगा इतना पैसा ?

बूढ़ा—(आकाश की ओर मुँह करता, सूरज की ओर देख कर कहता है—) हे दीनानाथ, तू ही साखी रहना। मुझे भरी सभा में बेइज्जत किया जा रहा है और किसी के मुँह से चूँ तक नहीं निकलती।

(इतना कह वह तेजी से निकल पड़ता है। जितने लोग हैं, सभी स्तब्ध उसकी ओर देखते हैं। उसके जाते ही तहसीलदार क्रोध से काँपते हुए उठता और ज़ोर से बूट रगड़ता कहता है—)

तहसीलदार—अभी ऐंठन बाकी है, देखना है कब तक...

तीसरा दृश्य

(लहराता हुआ धान का खेत। लम्बी-लम्बी हरी सुनहली धान की बालियाँ हवा के झोंके से झूम रहीं। बूढ़ा सुक्कन सोना के कंधे के सहारे खड़ा उत्सुक नजरों से उन्हें देख रहा। चेहरा तुरत के उठे मरीज़-सा। झुर्रियाँ और घनी हो गई हैं। एक हाथ में पतली लाठी; आधी टेक उसपर रख कर—)

बूढ़ा—सोना, यह सब तुम्हारे हाथ की बरकत है। उँह—इधर पाँच-छ साल से क्या ऐसे धान आये थे ?

सोना—बाबूजी, यह आप क्या कह रहे हैं ?

बूढ़ा—क्या झूठी मुँहपुराई कर रहा हूँ, बेटी ? जब मैं बीमार पड़ा, मैंने समझा, सब गया। लेकिन, तू तो बाप की सच्ची बेटी निकली। आखिर खेती सम्हाल ही ली। सच कहूँ—ऐसी फसल इधर कई वर्षों से नहीं देखी थी। (बढ़कर धान की कुछ बालियों को हाथ में लेता, झुककर उन्हें चूमता फिर कहता है—) खाट पर पड़ा-पड़ा ऊब गया था। आज सोचा, जरा देखूँ तो। सो, देखा क्या, निहाल हो गया। (फिर एक-एक बाली को बड़े गौर से, जैसे उसके एक एक दाने को देखता हुआ) सोना रानी देखती हो, इन बालियों में कैसे दाने भरे हैं। समूची बाली में एक भी संखरी नहीं। बेटी, बेशक यह तेरे हाथ का कमाल है ! ख्वाहिश होती है, इनकी आरियों पर घूमता ही रहूँ—बेटी, जरा मन भर घूमें तो।

(दोनों खेत की आरियों पर घूमते हैं—बूढ़ा एक हाथ से लाठी टेकता और एक हाथ से सोना के कंधे का आसरा लिये चलता है। रह-रहकर वह खड़ा हो जाता और धान की बाली को पकड़ता, गौर से देखता और चूमता है। आरियों के एक मोड़ पर जाकर वह खड़ा हो जाता और चारों ओर नजर दौड़ाकर देखता है और मुस्कुराते चेहरे से कहता है—)

बूढ़ा—बेटी, एक बात कहूँ, बुरा नहीं मानेगी ? बोल .

सोना—यह क्या बोल रहे हैं आज, बाबूजी ! मैं बुरा मानूं ? आपकी बात से ?

बूढ़ा—ठीक-ठीक, तू बुरा क्यों मानेगी ? लेकिन तू लजायगी तो नहीं ? (सोना शर्माती-सी उसके चेहरे की ओर देखती है, बूढ़े की बत्तीसी चमक उठती है। वह कहता है—) मेरी लजीली बेटी ! लेकिन आज मैं बिना कहे नहीं रहूँगा। अच्छा जरा बैठ जा, पैर दुख गये, तब कहूँगा। (दोनों बैठ जाते हैं। बूढ़ा बेटी के हाथ को अपने हाथ में लेकर उसे सहलाता हुआ) सोना, यह फसल तेरी है। मैं सोचता हूँ, यह तुझी में लगे। जिसकी चीज, उसमें लगे और मुफ्त में मेरा मनोरथ पूरे।

सोना—(लजा जाती है) आज यह क्या खुराफात सूझ रही है आपको बाबूजी !

बूढ़ा–(ज़ोर से हँसकर) हाँ, खुराफात ही तो। लेकिन ज़िन्दगी में खुराफात भी कर ही लेनी चाहिए और जल्दी ही। कौन, जाने-पका आम हूँ, कब टपक पड़ूँ ? (कुछ देर रुककर फिर कहता है—) हाँ, तो खुराफात होगी ! एक अच्छा दूल्हा खोजूँगा—खूब खूबसूरत दामाद। वह पालकी पर आयेगा—बरात आयगी, बाजे आयेंगे–मेरे दरवाज़े पर दिनरात बाजे झहरते होंगे—पोंपों-पोंपों-पीपी-पीपी—डुगडुग, डुगडुग..........

(इसी समय कहीं से डुगडुगी की आवाज़ सुनाई देती है। बूढ़ा चुप हो जाता है और उसकी बातें सुनकर जो शर्म के मारे गड़ी जा जा रहीं थीं, उस सोना से पूछता है—)

बूढ़ा—सोना, यह तो डुगडुगी की आवाज़ है न ? कहाँ से आ रही है। लगन के दिन तो नहीं—अगहन में कहीं लगन होती है ? देख तो बेटी, (सोना खड़ी हो जाती है — बूढ़ा भी लाठी के सहारे खड़ा हो जाता है; ध्यान-पूर्वक सुनकर)—तो यह आवाज़ डुगडुगी की ही तो है। कहाँ से आती है, किधर से आती है, रानी बिटिया ?

सोना — अपने उस खेत के नज़दीक से — हाँ, वहीं से तो। बहुत लोग हैं। कुछ लड़के, कुछ सयाने ?

बूढ़ा–(आतुरता से) किसी को पहचानती हो ? क्या अनजान लोग हैं ?

सोना—लोग तो पहचान के मालूम होते हैं। वह शायद बुद्धू चमार है, वही मालूम पड़ता है। कुछ और लोग हैं। चार-पाँच मालूम होते हैं, अरे लाल पगड़ियाँ भी हैं !

बूढ़ा—(आश्चर्य से) लाल पगड़ियाँ हैं ?

सोना—हाँ, लाल पगड़ियाँ हैं, कुछ लोगों के हाथों में लाठियाँ भी हैं–लम्बी-लम्बी !

बूढ़ा—ओहो, बुद्धू है, लाल पगड़ियां हैं, कुछ लाठियां हैं ! तो क्या किसी का खेत नीलाम हुआ है ? दखलदिहानी कराने आये हैं ! यह कौन हत्यारा है ? यह किसपर वज्र गिरा है ? भला इस भरी फसल में दखलदिहानी कराई जाती है ? यह हत्यारापन नहीं तो और क्या है ? जिसकी तैयार फसल लुट-जायगी, वह बेचारा कैसे रहेगा ? देख तो बेटी, वे किधर जा रहे हैं ?

सोना—कहा न, इधर ही तो आ रहे हैं। वह देखा, आ गये, नजदीक तो आ गये।

(बूढ़ा आँखों पर हथेली की ओट किये उस ओर निर्निमेष देखता है। वे सब-के-सब उसके खेत की उस तरफ की आरी पर आकर रुक जाते हैं। बूढ़ू अपनी डुगडुगी बजाता है। आवाज होती है। बूढ़ा घबराया-सा)

बूढ़ा—बेटी, यह क्या हो रहा है? क्या मेरे खेत को नीलाम कराया गया है? दखलदिहानी लेने आये हैं? सोना, बोल-बोलती क्यों नहीं?

सोना—बोलूँ क्या बाबूजी, ये तो सचमुच हमारे खेतपर बोली बोल रहे हैं।

बूढ़ा—समझा, समझा! यह उस तहसीलदार के बेटे की शैतानी है। उसे सोना ही चाहिए न? न आँगन का सोना, तो खेत का ही सही।

सोना—यह क्या बोल रहे हैं आप बाबूजी? सोना चाहिए? क्या वे मुझे चाहते हैं? बाबूजी

बूढ़ा—(एकबारगी, गम्भीर हो जाता है) न जीते जी खेत दूँगा, न सोना। अच्छा, वह तहसीलदार का जना भी है? जरा अच्छी तरह देख तो।

सोना—हाँ, वहीं तो है बाबूजी, वह हमलोगों की ओर देख कर हँस रहा है!

(बूढ़े में, न जाने कहाँ से, ताक़त आ जाती है। वह सोना के बच्चे को छोड़ कर हिरन की तरह उस ओर दौड़ता है। सोना एक क्षण स्तब्ध रहती है—फिर बाबूजी, बाबूजी कहती उसके पीछे दौड़ती है। बूढ़ा जाकर अपनी लाठी तहसीलदार के सिर पर चला देता है। तहसीलदार पर लाठी लगते ही सिपाहियों की लाठियाँ उसपर बरसने लगती हैं। सोना चिल्लाती है—बूढ़ा गिरता है। सब भागते हैं। खून से लथपथ बूढ़े की लाश को उठाती सोना धाड़ मार कर रोती है)

सोना—बाबूजी, बाबूजी,

(बूढ़ा एक बार नज़र खोलता है। सोना के चेहरे को घूरता है—फिर लपक कर धान की एक मुट्ठी बालियों को पकड़ कर चूमने की-सी चेष्टा करता और लुँघड़ पड़ता है। फिर आँखें खोलता, बड़बड़ाता है।)

बूढ़ा– सोना चाहिए, खेत चाहिए ! धन लेंगे या धरम लेंगे ! दौलत दो या इज्ज़त दो। बदमाश, शैतान ! (हँसता हुआ) अहा कैसी लाठी लगी—तुम्हारा एक चुल्लू खून—हमारा एक घड़ा खून ! खून—खून ! ओहो ! (दर्द महसूस करता हुआ) पानी, बेटी पानी ! (दुर्बलता में खड़ा होता हुआ) वह आया बेटी, वह आया ! लाठी लाठी—खून-खून ! दौलत दो या इज्ज़त दो ! लाठी बेटी, लाठी ! (गिर पड़ता है)

सोना—(व्याकुल होकर) बाबूजी,बाबूजी !

बूढ़ा—बेटी सोना, पानी ! पानी ! (सिर से निकलते खून की धारा को प्यास की अधिकता में अँगुली से पोंछकर चाटता है !) खून, उफ ! (थूकता है) खून लो, शैतानो, खून लो ! खून पीओ ! (उठने की चेष्टा करता हुआ) तुम कसाई हो, राक्षस हो, जोंक हो ! राक्षस, जोंक, कसाई ! खून पीओ, खून पी...... (बूढ़ा ढह पड़ता है, उसकी साँस बंद होने लगती है)

शहीदों की चिताओं पर

"मातृ-मन्दिर में हुई पुकार,
चढ़ा दो हमको हे भगवान !"

हाँ, माता ने पुकार की।

माता ने — बन्दिनी माता ने। जिसके पैरों में बेड़ियाँ थीं, हाथों में कड़ियाँ थीं। जिसकी आँखों में आँसू थे, जिसकी पुकार में गुहार थी।

बन्दिनी माँ पुकार रही थी, गुहार रही थी। किन्तु किसे फुर्सत थी सुनने की ? सब अपने में भूले थे, सबको अपनी पड़ी थी।

बड़े-बड़े विद्वान—दिग्गज विद्वान ! बड़े-बड़े बलवान—कलियुगी भीम ! माँ बन्दिनी थी, किन्तु वन्ध्या न थी। विद्वानों, बलवानों, कवियों, कलाकारों, वैज्ञानिकों, दार्शनिकों से अब भी गोद भरी थी उसकी।

किन्तु किसे फुर्सत थी, उसकी पुकार सुनने की ? गुहार सुनने की ?

विद्वान अनुसन्धान में लगे थे। बलवानों को आपसी ज़ोर-आज़माई से ही फुर्सत नहीं थी। कवि दिवा-स्वप्न देख रहे थे, कलाकार रंगामेज़ी में लगे थे। वैज्ञानिकों को प्रयोगशाला ने उलझा रखा और दार्शनिकों का 'तत्वमसि' का मसला हल नहीं हो पाता था।

आँसुओं से माँ का आँचल भींगा जा रहा था; पुकार से उसका गला रुँधा जा रहा था !

"ओ मेरे बेटो, कहाँ हो ? ओ मेरे बेटो ! किधर देख रहे हो ? क्या कर रहे हो ?

अरे, ये मेरी बेड़ियाँ, ये कड़ियाँ ! और यह मेरा बुढ़ापा ! तुम क्या कर रहे हो ! क्या सुन रहे हो !

क्या मेरा उद्धार न करोगे ? क्या मैं यों ही तड़प-तड़पकर मर जाऊँ ? क्या इसी लिए दूध पिलाया था ? क्या इन्हीं दिनों के लिए तुम्हें गोद खेलाया था ?

तुम बेटे हो मेरे ? तो फिर क्यों नहीं सुनते ?"

किन्तु कौन सुने ? फुर्सत किसे थी ? विद्वानों का तत्त्वान्वेषण समाप्त नहीं हो रहा था, बलवान अखाड़े पर डंड पेल रहे थे, कवियों का दिवा-स्वप्न टूट नहीं रहा था, कलाकारों का कल्पना-लोक विस्तृत ही होता जाता था, वैज्ञानिकों को प्रयोगशाला छोड़ती नहीं थी और दार्शनिक इस जगत्याम् जगत के झमेले में अपने को क्यों लगायें ?

और, माँ पुकार रही थी, गुहार रही थी, रो रही थी, चीख रही थी।

कि लोगों ने देखा—वह कोई बढ़ रहा है !

कोई बढ़ रहा है ! पागल-सी सूरत, भोलेपन की मूरत। आँखों में प्रमाद की-सी छाया। किन्तु पैरों में, चाल में एक अजीब दृढ़ता !

वह बढ़ा-बढ़ा; बढ़ता गया—बढ़ता गया !

× × ×

"सफलता पाई अथवा नहीं
उन्हें क्या ज्ञात दे चुके प्राण,

विश्व को चाहिए उच्च विचार ?

नहीं; केवल अपना बलिदान!"

जब वह चला, किसी ने कहा—पागल! किसी ने कहा—बददिमाग़!

अरे गुस्ताख़ है, गुस्ताख़! जहाँ बिजली-बत्ती भी बुझ जाय, वहाँ यह चिराग़ जलाने की जुर्रत करने चला है?

रुको—आग में मत कूदो। तुम आदमी हो, पतंगा क्यों बनते हो?

किन्तु इन बातों पर उसने मुस्करा दिया! वह बढ़ता गया!

"नाथ! कहाँ चले तुम मुझे छोड़कर नाथ?"

"भैया, भैया! कहाँ जा रहे हो, हमें छोड़कर?"

"बेटा! उफ़, कितनी तपस्या के बाद तुम्हें पाया। मेरी गोदी क्यों सूनी कर रहे हो, बेटा?"

"मित्र, ज़रा हमारी ओर भी तो ध्यान दो!"

अब हँसी की जगह उसके चेहरे पर करुणा थी! किन्तु वह बढ़ता गया।

दम्भी शासन ने उसे ललचाया!

दम्भी शासन ने उसे धमकाया!

दम्भी शासन ने अपना ख़ूनी पंजा बढ़ाया।

ललचाया, धमकाया, ख़ूनी पंजा बढ़ाया! ख़ूनी पंजा—मृत्यु का पंजा!

दुनिया चीख़ उठी—आह, आह! प्रकृति चीख़ उठी—आह, आह!

हवा काँपी, ज़मीन काँपी, हृदय काँपे!

किन्तु, वह बढ़ता गया—दृढ़ चरण, सम गति, धमनियों में उल्लास की तरंगें, चेहरे पर आनन्द की लहरियाँ।

"नाथ! .. .. "

"भैया! .. .. "

"बेटा !....................."

"मित्र !................."

कान में यह क्या साँय-साँय आवाज़ ? क्षण भर के लिए वह चौंका, वह रुका ! कान में यह कैसी साँय-साँय आवाज़ ?

किन्तु, इसी समय फिर उसके कानों में भनक आई—"ओ मेरे बेटो ! अरे, ये मेरी बेड़ियाँ................."

"आया माँ, आया !" वह चिल्ला उठा, वह बढ़ा चला ! सामने सनसनाती गोलियाँ; उसनें सीना खोल दिया ! आगे फाँसी का तख़्ता; वह उछल कर चढ़ गया !

खून की कुछ बूँदें ज़मीन पर गिरीं !

एक क़ीमती जान घुटकर चल बसी !

नीचे दुनिया रो रही थी, ऊपर वह तराने लगाता जा रहा था ! नीचे स्वजनों और परिजनों की हिचकियाँ ! ऊपर किन्नरियों के नृत्य, अप्सराओं के पंखों की फटफटाहट !

बुढ़िया माँ ने देखा, उसकी जंजीर की एक कड़ी कट चुकी है !

× × ×

"ऐ शहीद ! उठने दे अपना फूलों भरा जनाज़ा !"

शहीद का जनाज़ा—वह फूलों से भरा उठाना ही चाहिए !

जिसने अपने को देश पर, आदर्श पर कुर्बान कर दिया, उसके प्रति अपना अन्तिम सम्मान भी तो हम प्रकट कर लें।

काश, ऐसा हो पाता ?

कितने ऐसे शहीद हुए, जिन्हें यह अन्तिम सम्मान भी प्राप्त हो सका ?

जिन्होंने उन्हें शहीद बनाया, उन्होंने यह भी कोशिश की कि उनकी लाश तक किसी को नसीब न होने पाये।

उनकी जान लेकर ही उन्हें सब्र न हुआ, उनकी लाश की दुर्गत कराने से भी वे बाज़ नहीं आये !

फिर, शहीद न्योता देकर तो मरने जाते नहीं—प्रायः उन्होंने ऐसी जगहों पर प्राणार्पण किये, जहाँ उनका अपना कोई नहीं था !

सन् सत्तावन के शहीदों के कारुणिक निधन पर बागी बादशाह 'जफर' ने आँसू बहाये थे—

> न दबाया जेरे चमन उन्हे,
>
> न दिया किसी ने कफन उन्हे,
>
> किया किस्मते यार दफन उन्हे,
>
> बे ठिकाना उनका मजार है !

सत्तावन के शहीदों की यह परम्परा हमारे देश में हमेशा कायम रही !

कूका-विद्रोह के शहीदों का कहीं मजार है !

१९०५ से १९१५ तक के बम-पिस्तौल-युग में जिन शहीदों ने कानाडा से अमृतसर और बगाल से कुस्तुन्तुनिया तक अलौकिक कारनामे दिखाये, क्या उनका नामोनिशान भी हम कहीं पा रहे हैं, आज !

१९२१ से १९४२ तक के, गाँधी-युग के, अनेक शहीदों का भाग्य भी कुछ दूसरा नहीं रहा !

सरदार भगत सिंह को किस चमन में दफनाया गया ? सरदार नित्यानन्द को क्या कफन भी दिया जा सका ?

आजाद-हिन्द-फौज के जिन सैनिकों ने अपने खून से शौनान से मणिपुर तक की भूमि को सींचा, उनकी चितायें कहाँ जलाई गईं ? बयालीस के बाद जिन बागियों ने देश के कोने-कोने में शहादत की धूनी रमाई, उनका ठौर-ठिकाना भी क्या आज मिल सकता है ?

जब हम युद्ध में होते हैं, हमें पीछे देखने की फुरसत कहाँ रहती है ?

जब हम युद्ध से बाहर होते हैं, आगे की तैयारियाँ या निर्माण की समस्यायें ही हमें इस तरह आ दबोचती हैं कि चाहकर भी हम पीछे देख नहीं पाते।

जिन्दों के मसले हमपर इस तरह हावी हो जाते हैं, कि मुर्दों की ओर कौन ध्यान दे ?

आह, ओ शहीद !

हाय, ओ शहीद !

× × ×

शहीदों की चिताओं पर
जुड़ेंगे हर बरस मेले,
वतन पर मरने वालों का
यही बाक़ी निशाँ होगा।

तो भी यह कहा गया है। इसे गाया गया है!

क्या यह झूठ है ? क्या ऐसा इसलिए कहा गया है कि कुछ बेवकूफ़ आगे बढ़ कर जान दे दें ? या किसी भावी शहीद ने अपने को आत्मवंचना में रखने के लिए ये पंक्तियाँ लिख दी थीं ?

आज हम आज़ाद हैं, खूब मेले लगा रहे हैं। किन्तु शहीदों की चिताओं पर एक भी मेला जुटते आज तक कहीं देखा गया ?

किसी ने यह पता लगाने की कोशिश की कि वे कौन थे ? उनकी चितायें कहाँ-कहाँ पर जलीं ?

आत्मवंचना ! विश्वप्रपंच !!

किन्तु ऐसा मत कहो, ऐसा मत कहो !

सत्य का सूर्य प्रायः बादल से ढँकता है। किन्तु बादल बादल है, सूर्य सूर्य !

शहादत सत्य है; फानूस में ढँपी दीप-शिखा की तरह विस्मृति की धुँधलाहट से घिरी शहादत और भी सुन्दर लगती है।

अलग-अलग घर से दीये आते हैं, देवस्थान पर पहुँच कर उनकी भिन्नता नष्ट हो जाती है, वे सब एक दीपावली के नाम से अभिहित होते हैं!

तुम किसी शहीद का नाम भुला दो, उसकी बलि-भूमि की भी याद तुम्हें न रहे—किन्तु शहादत को तुम भूल नहीं सकते, शहीद भुलाये नहीं जा सकते !

जब-जब शहीदों की चर्चा होगी, हमारी आँखें गीली हो उठेंगी।

जब-जब शहीदों की चर्चा होगी, हमारे हृदय उच्छ्वसित हो उठेंगे !

जब-जब शहीदों की चर्चा होगी, हमारे सिर आप-ही-आप झुक जायेंगे !

रक्त के बने हम प्राणी, रक्त-दान को हम नहीं भूल सकते !

धन्य हैं, वे जो रक्त-दान देकर अमर हो गये !

उनका स्थान मन यहीं होगा, जहाँ अमरों का अधिवास है।

जहाँ जरा नहीं है, जड़ता नहीं है, ज्वर नहीं है, जाड़ा नहीं है।

जहाँ सदा वसन्त है, अक्षय स्वास्थ्य है, निर्धूम चेतना है, शाश्वत यौवन है।

जहाँ धुंधला न है, विस्मृति न है।

हमारे शहीद वहाँ पहुँच चुके हैं, जहाँ से वे हमारी स्मृति-लघुता पर मुस्करा रहे होंगे; हमें अनेक क्षुद्र स्वार्थों में उलझे देख सिहर-सिहर उठते होंगे!

वे पृथ्वी पर आये थे, किन्तु अमरों के वंश से थे।

इसलिए पृथ्वी के पाप-ताप उन्हें न दबोच सके, और पहला मौका पाते ही हमें मरने-जलने को छोड़ कर वे चलते बने!

उनकी स्मृति ही उनकी चिता है। वह चिता मानव-मन में हमेशा धू-धू करके जलती रहेगी और उसके आस-पास सदा मेले जुड़ते रहेंगे।

मेले—जहाँ पत्नियों के आँसू होंगे!

मेले—जहाँ माताओं की उसांसें होंगी!

मेले—जहाँ बहनों के सूखे चेहरे होंगे!

मेले—जहाँ मित्रों के मुरझाये मन होंगे!

मेले—जहाँ हर आदमी के हाथों में श्रद्धांजलि की मालायें होंगी!

हाथों में माला; आँखों में आँसू—

"वतन पर मरने वालों का यही बाक़ी निशाँ होगा।"
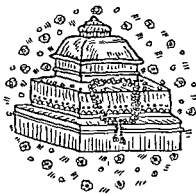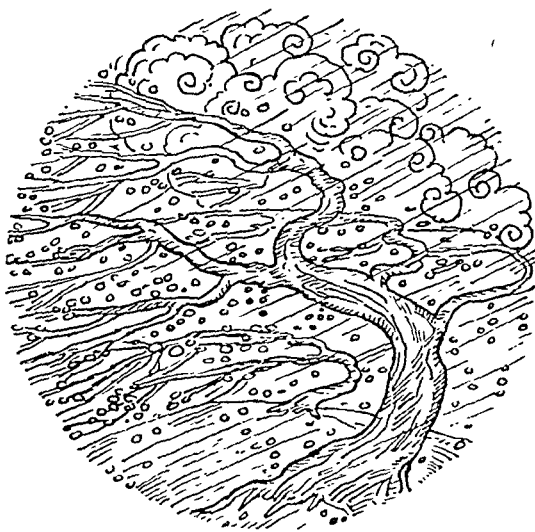
आँधी में चलो

आप खिली चाँदनी में चलना चाहते हैं, मैं चिलचिलाती धूप में। आपको संध्या की सुनहली साड़ी पसन्द आती है, मुझे निशीथ का कज्जल अंचल। आपके भावुक हृदय को ऊषा की मुस्कान जँचती है, मेरा ऊसर मन दुपहरिया की धू-धू खोजता है। योंही, आप शीतल मन्द सुगन्ध समीर में मन्द-मन्द विचरण करना चाहते हैं और मैं आँधी के बीच इठलाते चलना चाहता हूँ।

कितने नीरस हो तुम—कहेंगे आप! कितने खूसट हैं आप—कहूँगा मैं!

न मालूम किसने और क्यों सौन्दर्य के साथ कोमलता का गठ-बन्धन कर दिया। सौन्दर्य का नाम लेते ही हमारी आँखों के सामने किसी कामिनी का गुलाबी चेहरा, किसी पुष्प की मृदुल कलिका, किसी उपवन की झलमल रंगीनियाँ या किसी जलाशय की चंचल लहरों पर

चाँदनी का नृत्य नाचने लगता है। मेरे जानते ये मानव-जाति की शिशुता की कल्पनायें हैं। बच्चे ही रंगीन चीजों को ज्यादा पसन्द करते हैं ?

शिशुता की कल्पना होने पर भी इसमें पुरातनता की सड़ी गन्ध है। इसीसे मैं कहता हूँ, आप खूसट हैं।

जरा नये ढंग से सोचिए—नवीन रुचि, नवीन प्रवृत्ति, नवीन-इच्छा, नवीन आकांक्षा, नई चाह, नई राह—जवानी का यही तो शृंगार है। यदि यह नहीं, तो जवानी कहाँ, यौवन कहाँ !

यदि आप गौर करेंगे तो पायेंगे कि आपकी धारणायें आप की अपनी नहीं हैं, या तो आपने उधार लिया है या चुपके से, चोर की तरह आपके दिमाग में घुस कर उन्होंने घर कर लिया। ऐसा घर कि घरवाले के लिए घर में जगह नहीं। चोर बोलता है, और हम समझते हैं हम बोल रहे हैं। आह ! मनुष्य अपने को कितना गुलाम बनाये हुआ है ? हमारी आँखें अपनी होती हैं, किन्तु देखते हैं दूसरे की नजर से, हमारे कान अपने होते हैं, किन्तु श्रवन-शक्ति दूसरे की, हमारा मस्तिष्क अपना होता है, किन्तु चिन्तन-प्रणाली अन्य की। यदि आप स्वतंत्र होना चाहते हैं तो अपनी ज्ञानेन्द्रियों को गुलामी से छुड़ाइये—अपनी आँख से देखिए, अपने कान से सुनिए, अपनी नाक से सूँघिए, अपनी जीभ से चखिए। सोचिए अपने ढँग से, बोलिए अपनी बात।

आप चाँदनी का सौन्दर्य देखते हैं पुरानी नजरों से, जरा नई नजर से खिलखिलाती धूप के सौन्दर्य को देखिए। मन्द समीरण का मजा, पुरानी रुचि के अनुसार बहुत लूट चुके, अब जरा आँधी की बहार भी लूटिए।

सौन्दर्य का क्षेत्र सीमित नहीं है। जहाँ कहीं भव्यता है, प्रोज्वलता, महत्ता और अलौकिकता है, वहीं सौन्दर्य है। हाँ देखनेवाली आँखें चाहिए।

पुष्पवाटिका में विचरण करनेवाली "कंकण किंकिणी नुपुर-धुनि" वाली कुमारी जानकी में सौन्दर्य है, तो अशोक-वाटिका में बैठी, रुक्ष केश, शुष्क वदन, तपस्या-रत अर्द्धांगिनी सीता में भी कम सौन्दर्य नहीं है। जनकपुर में दुलहे के रूप में बैठे 'कोटि मनोज लजावन

हारे' राम में सौन्दर्य है; तो समुद्र से राह माँगकर भी न पाने वाले क्रुद्ध मूर्त्ति, कुटिल भृकुटि, वाण चढ़ा कर धनुष की प्रत्यंचा खींचते हुए रुद्र-रूप राम में भी अपार सौन्दर्य है। आप गोकुल की रास-लीला में लीन कन्हैया में सौंदर्य पाते हैं, किन्तु भीष्म के वाण से व्याकुल कुरुक्षेत्र के चक्रधर में नहीं, तो मैं कहूँगा आपका दुर्भाग्य है। हरिणी की निरीह आँखें सौन्दर्यमयी हैं, और क्रुद्ध सिंह की जलती आँखें भी। चाँदनी में मज़ा है, तो धूप में भी ! सन्ध्या को आप वहुत टहलते होंगे, एक दिन आधी रात को टहलिए—चारों ओर घोर अन्धकार, निस्तव्धता का साम्राज्य, कोई राही नहीं, कहीं राह नहीं और आप दनादन अकेले आगे वढ़ते जा रहे हैं, ? आह ! कितना मज़ा !!

और आँधी के वीच ? मत पूछिए। दिन रात "इन्क़लाव ज़िन्दा-वाद" चिल्लाते हुए भी आपने यदि आँधी का मर्म नहीं जाना, तो मैं कहूँगा आप अभी ऊपर की सतह पर हैं, चीज़ों के मर्म में घुस कर देखने की सतत जाग्रत प्रवृति आपमें है नहीं।

हड़ हड़ हड़, हा हा हा—वृक्ष उखड़ रहे हैं, पत्ते उड़ रहे हैं, धूल और तिनके का नाम निशान मिटना चाहता है। हड़ हड़ हड़ हा हा हा—खिड़कियाँ टूट रही हैं, छतें हिल रही हैं, छप्पर उखड़ रहे हैं। हड़ हड़ हड़, हा हा हा—मनुष्य व्याकुल हो राम-गुहार कर रहे हैं; पशु व्याकुल हो इधर-उधर मारे-मारे भाग रहे हैं, और वेचारे पंछी—कितने के डैने टूट गये, कितने के चंगुल में मरोड़ पड़ गया— पतली डालियों को चंगुल से जकड़ कर वे वचना चाहते थे। कड़ कड़ कड़—वह डाली टूटी; हड़ हड़ हड़—वह छप्पर उड़ा; हा हा हा—वह क्रन्दन सुनिए—कोई दुर्घटना हुई क्या ?

और, ऐसी आँधी में चलना। आँखों में धूल, देखने की किसकी हिम्मत ? कानों में एक ही स्वर, और कुछ सुन नहीं सकते। कभी एक झोंका पूरव की ओर घसीट ले जाता है, कभी दूसरा दक्षिण की ओर। तो भी चलते रहना—अपने निश्चित लक्ष्य की ओर। कैसे ? एक दिन चल कर देखिए—वताने से ऐसी चीज़ें समझ में नहीं आतीं।

आँधी, तूफान, ज्वार, वाढ़, इन्क़लाव, विप्लव, क्रान्ति, रेवोल्यूशन सव प्रकृति की एक ही उद्दाम—लीला के भिन्न-भिन्न नाम हैं। हां।

किसी ने कहा है, Think dangerously—खौफ़नाक ढंग से सोचो। दूसरे ने कहा है—Live dangerously—खतरे में रहो। मैं कहता हूँ—दोनों को अपनाओ, ये एक दूसरे का पूरक हैं।

कोमलता बचपन है, कठोरता जवानी। बुढ़ापे की बात, बूढ़े जानें।

युवको ! कठोर बनो—साहसी बनो, दुस्साहसी बनो। आँधी में खेलो, तूफ़ान से दोस्ती जोड़ो। हाँ, तूफ़ान से।
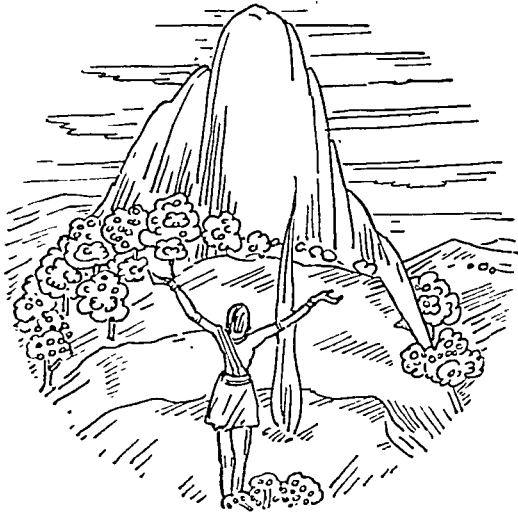
कस्मै देवाय हविषा विधेम

'कस्मै देवाय हविषा विधेम ?'

किस देवता के श्री चरणों में मैं अपनी अँजलि अर्पित करूँ—कौन है वह देवता जो मेरी इस श्रद्धांजलि के पाने का उपयुक्त पात्र है ?

वह—वह जो अभी आने को है, किन्तु जिसकी झलक अभी मैं उस पर्वत की चूड़ा पर दीख पड़ती है। क्या वह उपयुक्त पात्र है, मेरे इस दिव्य उपहार के पाने का ?

वह प्रकाशमान है, ज्योति-दाता है। है—मैं मानता हूँ। किन्तु साथ ही वह वही तो है जिसकी पहली किरण पर्वत की सबसे ऊँची चोटी पर पड़ती है, दुपहरिया मे सबसे ऊँचे स्थान में रह कर जो दीनों पर

अग्निबाण बरसाता है और अंत में भी जिसकी उच्चप्रियता कम नहीं होती, अपनी अंतिम उसाँसों से—अपने कलेजे के खून से—आकाशचारी बादलों को रक्त-रंजित कर जाता है।

नहीं—कदापि नहीं।

वह, जो इतने विशाल रूप में हमारे सामने खड़ा है ?

उसका उज्वल धवल ललाट कितना आकर्षक, कितना मोहक है—प्रातः सध्या को वह और भी कितना सुन्दर रूप धारण कर लेता है। उसके वक्षस्थल का पीत रंग, उसके कटि-देश का धूसर रंग और उसके पद-प्रदेश का नेत्ररंजक कलित हरित रंग—कैसा सुहावना है वह। किन्तु इतने झरनों, नालियों और नदियों का जल-दाता होकर भी तो वह पत्थर-हृदय है।

नहीं, कदापि नहीं।

किसकी मधुर स्मृति में यों गुनगुनाती जाती हो—सहचरी सरिते ! कितनी ही ऊषा, सन्ध्या और निशीथ तेरे इस अव्यक्त गान का अर्थ लगाने में मैंने व्यतीत कर दिये, कितनी ज्वालाओं को तेरी तरंगों–तेरे हृदय के फफोलों के साथ खेलने को छोड़ दिया, कितनी ही कामनाओं को तेरी अन्तर्धारा में लीन कर दिया। हे जगत के पाप-ताप तिरोहित करनेवाली तरंगिनी ! इच्छा होती है, यह अर्घ्य भी तुम्हारे ही चरणों में चढ़ा दूँ। किन्तु तुम नगराज कन्या जो हो। यह विद्रोही, राज-सत्ता को कैसे स्वीकृत करे !

नहीं, कदापि नहीं।

वनस्पति ?—ऊँचे-ऊँचे, आकाश-हृदय-विदारी, पादप-पुंज, उनमें लिपटी लोनी-लोनी, पुष्पों से लदी, लतिकायें, गले-से-गले हिले-मिले रंग-बिरंगे पौधे; जगत को जीवन देनेवाली ससार-प्राण-स्वरूपा श्यामल शस्यराजि; और, पृथ्वी की सरसता का अनेक पद-प्रहारों को सह, कर भी अक्षुण्ण रखनेवाली प्यारी-न्यारी दूब—मन उमगता है, हृदय उछलता है तुम्हारे ही ऊपर अपनी इस अंजलि को अर्पण करने का। किन्तु विनाश की गोद में खेलनेवाला यह विद्रोही केवल शिव-सुन्दरम् की उपासना कैसे करे ?

नहीं–कभी नहीं !

तो फिर वह कौन है, वह अमंगल-मूर्ति, सुन्दरता-सदन; प्रलय-पटु, सृष्टि-कुशल;—जिसके पावन पदों में यह अर्घ्य अर्पित हो—सादर समर्पित हो ! कौन है वह देवता—कहाँ है वह देवता—हे मेरे अन्तर के प्रभु, बताओ। बताओ—

'कस्मै देवाय हविषा विधेम !'
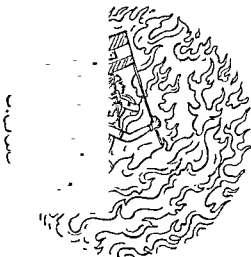
इन्कलाब जिन्दाबाद

भगतसिंह की शहादत पर

अभी उस दिन की बात है। हिन्दुस्तान की नामधारी पार्लियामेन्ट—लेजिस्लेटिव-एसेम्बली में बम का धड़ाका हुआ। उसका धुआँ विद्युत-तरंग की तरह भारत के कोने-कोने में फैल गया। बड़े-बड़े कलेजेवालों के होश गायब हुए, आँखें बंद हुईं—मूर्च्छा की हालत में कितने ही के मुँह से कितनी ही अंट-संट बातें भी निकलीं।

उस धुएँ में एक पुकार थी, जो धुआँ के विलीन हो जाने पर भी, लोगों के कान को गुंजित करती रही। वह पुकार थी—"इन्क़लाब ज़िन्दाबाद।"

"लौंग लिव रेवोल्यूशन"—"इन्कलाब जिन्दाबाद"—"विप्लव अमर हो।" इस पुकार में न जाने क्या खूबी थी कि एसेम्बली से निकल

कर भारत की झोपड़ी-झोपड़ी को इसने अपना घर बना लिया। देहात के किसी तंग रास्ते में जाइए, खेलते हुए कुछ बच्चे आपको मिलेंगे। अपने धूल के महल को मिट्टी में मिला कर उनमें से एक उछलता हुआ पुकार उठेगा—"इन्क़लाब" एक स्वर में उसके साथी जवाब देंगे "जिन्दाबाद ?" फिर छलाँग भरते वे नौ दो ग्यारह हो जायँगे !

सरकार की नज़र में यह पुकार राजद्रोह की प्रतिमा थी, हममें से कुछ के विचार में इसमें हिंसा की बू थी। इसके दबाने की चेष्टायें हुईं। किन्तु ऐसे सारे प्रयत्न व्यर्थ हुए। लाहौर काँग्रेस के सभापति पं० जवाहर लाल नेहरू ने अपने भाषण को इसी पुकार में समाप्त कर इसपर वैधता की मुहर लगा दी। अब तो यह हमारी राष्ट्रीय पुकार हो गई है।

हम नौजवान इस पुकार पर क्यों आशिक हैं ? क्रान्ति को हम चिरजीवी क्यों देखना चाहते हैं ? क्या इसमें हमारी विनाश-प्रियता की गन्ध नहीं है ?

युवक समझते हैं कि हमारी सरकार, हमारा समाज, हमारा परिवार आज जिस रूप में है, वह बरदाश्त करने लायक, निभाने लायक, किसी तरह काम चलाने लायक भी, नहीं है। उसमें व्यक्तित्व पनप नहीं सकता, बन्धुत्व और समत्व के लिए उसमें स्थान नहीं, मनुष्य के जन्मसिद्ध अधिकार स्वातंत्र्य तक का वह दुश्मन है। आज मनुष्यता इस मशीन में पिस रही है—छटपटा रही है, कराह रही है। कुछ तोड़-जोड़, कुछ काट-छाँट, कुछ इधर-उधर से अब काम चलने-वाला नहीं। यह घर कभी अच्छा रहा हो, किन्तु अब जान का खतरा हो चला है; अतः हम इसे ढाह देना चाहते हैं, ज़मींदोज़ कर देना चाहते हैं। क्योंकि इस जगह पर हम अपने लिए एक नया सुन्दर हवादार मकान बनाना चाहते हैं। हम विप्लव चाहते हैं—क्या करें, सलाह-सुधार से हमारा काम चल नहीं सकता।

और, हम चाहते हैं कि विप्लव अमर हो, क्रान्ति चिरजीवी हो। क्यों ? क्योंकि मनुष्य में जो राक्षस है, उसकी हमें खबर है। और खबर है इस बात की, कि यह राक्षस, राक्षस की ही तरह, बढ़ता और मनुष्य को आत्मसात कर लेता—उसे राक्षस बना छोड़ता है। इस लिए कि यह राक्षस शक्तिसंचय न करने पाये, मनुष्यता को

कुचलने न पावे, हम शान्ति का पुजार लिए उसके समक्ष सदा बद्धपरिकर रहना चाहते हैं। शान्ति अमर हो, जिसमें मानवता पर दानवता का राज्य न हो, शान्ति अमर हो, जिसमें कँटीले ठूंठ विश्व-वाटिका के कुसुम-कुंजों को कटक-कानन न बना डालें, शान्ति अमर हो, जिसमें संसार में समता का जल निर्मल रहे, कोई गँवार उसे गँदला और विषैला न कर दे। प्रवंचना, पाखंड, धोखा, दगा के स्थान में सभ्यता, सहृदयता, पवित्रता और प्रेम का बोल-बाला रहे—इसलिए विप्लव अमर हो, शान्ति चिरजीवी हो।

विनाश के हम प्रेमी नहीं हैं किन्तु विनाश की कल्पना-मात्र ही हममें कँप-कँपी नहीं लाती, क्योंकि हम जानते हैं कि बिना विनाश के निर्माण का प्रथम चक्र नहीं चलता।

इन्कलाब जिन्दाबाद का प्रवर्तक आज हममें नहीं रहा। विप्लव के पुजारी की अन्तिम शय्या सदा से फाँसी की टिकटी रही है। भगत सिंह अपने वीर साथियों—सुखदेव और राजगुरु के साथ हँसते-हँसते फाँसी पर झूल गया। झूल गया—हँसते-हँसते, गाते-गाते—'मेरा रँग दे बसन्ती चोला'। सुना है, उसने मैजिस्ट्रेट से कहा—"तुम धन्य हो मैजिस्ट्रेट कि यह देख सके कि विप्लव के पुजारी किस तरह हँसते-हँसते मृत्यु का आलिंगन करते हैं"। सचमुच मैजिस्ट्रेट धन्य था, क्योंकि न केवल हमें, किन्तु उनके माँ-बाप सगे-सम्बन्धी को भी उनकी लाश तक देखने को न मिली। हाँ, सुनते हैं, किरासिन के तेल में अधजले माँस के कुछ पिंड, हड्डियों के कुछ टुकड़े और इधर उधर बिखरे खून के कुछ छींटे मिले हैं। उहे किस्मत !

भगत सिंह न रहा। गाँधी का आत्मबल, देश की सम्मिलित भिक्षा-वृत्ति, नौजवानों की विफल चेष्टायें—कुछ भी उसे नहीं बचा सका। खैर भगतसिंह न रहा, उसकी कार्य-पद्धति आज देश को पसन्द नहीं, किन्तु उसकी पुकार तो देश की पुकार हो गई है। और, केवल इस पुकार के कारण भी वह इतिहास के लिए अजर-अमर हो गया।

सभी ऋषि मन्त्र-निर्माण के अधिकारी नहीं, उनमें भी गायत्री का प्रवर्तक तो ब्रह्मा ही हो सकता है। इन्कलाब-जिन्दाबाद साधारण

मंत्र ही नहीं रहा, वह राष्ट्र का गायत्री-मंत्र हो चुका है। इसके ब्रह्मा ने कमण्डलु की जल से नहीं; अपने खून के छींटे से इसे पूत किया है।

आज भारत का ज़र्रा ज़र्रा पुकार रहा है—

"इन्क़लाब जिन्दाबाद।"

(इस लेख पर लेखक को गोरी सरकार से डेढ़ साल की सख्त क़ैद की सज़ा मिली थी !)

नई संस्कृति की ओर

हिन्दोस्तान आजाद हो गया। आजाद हिन्दोस्तान का ध्यान एक नये समाज के निर्माण की ओर केन्द्रित हो रहा है।

यह नया समाज कैसा हो ?—उसका मूल आधार कैसा हो, उसका विराम किस प्रकार किया जाय ? हिन्दुस्तान का हर देश-भक्त इन प्रश्नों पर सोच-विचार कर रहा है।

समाज को अगर एक वृक्ष मान लिया जाय, तो अर्थनीति उसकी जड़ है, राजनीति तना; विज्ञान आदि उसकी डालियाँ हैं और संस्कृति उसके फूल !

इसलिए नये समाज की अर्थनीति या राजनीति आदि पर ही हमें ध्यान देना नहीं है बल्कि उसके [illegible] र सबसे अधिक ध्यान देना है, [illegible] ही है।

फिर इन तीनों का सम्बन्ध परस्पर इतना गहरा है कि आप इन्हें अलग-अलग कर भी नहीं सकते। नई अर्थनीति और राजनीति के साथ एक नई संस्कृति का विकास हमारी आँखों के सामने हो रहा है– भले ही हम उसे देख न पायें या उसकी ओर से अपनी आँखें मूंद लें।

अन्य क्षेत्रों में हमारी पंच-वार्षिक, दश-वार्षिक योजनाएँ आ रही हैं, किन्तु क्या यह आश्चर्य की वात नहीं है कि संस्कृति के विकास में प्रगति देने के लिए एक भी व्यापक योजना हमारे सामने नहीं आ रही है !

गत पचास वर्षों के राजनीतिक आर्थिक संघर्षों ने हमारे दिमाग़ को इतना भोथरा वना दिया है कि संस्कृति की सुकुमार दुनिया हमारी पथराई आँखों के सामने आकर भी नहीं आ पाती।

गेहूँ हमारी आँखों पर इस क़दर छाया हुआ है कि गुलाव को हम देखकर भी नहीं देख पाते।

गेहूँ के सवाल को हल कीजिए, और ज़रूर हल कीजिए, किन्तु किसलिए ? सदा याद रखिए, आदमी सिर्फ चारा या दाना खानेवाला जानवर नहीं है।

समाज की सारी साधनाओं की परिणति उसकी संस्कृति में है। जड़ में खाद-पानी दीजिए, तीनों की डालियों की रक्षा कीजिए; किन्तु नज़र रखिए फूल पर !

फूल पर, गुलाव पर, संस्कृति पर !

नये समाज की वह हर योजना अधूरी है, जिसमें नई संस्कृति के लिए स्थान नहीं।

× × ×

सूरज डूबने जा रहे थे, उन्होंने कहा कौन मेरे पीछे इस संसार को आलोक देगा !

चाँद थे, सितारे थे—सब चुप रहे। छोटा-सा मिट्टी का दीया। उसने बढ़कर कहा—देवता, यह भारी बोझ मेरे दुर्बल कंधों पर !

कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक कविता की यह एक कड़ी है।

जब राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री दूसरी बड़ी-बड़ी योजनाओं में लगे हैं; ओ कलाकारो चलो, हम अपनी परिमित शक्ति से इस क्षेत्र में कुछ काम कर दिखायें।

आखिर यह क्षेत्र भी तो हमारा ही है। गुलाब की खेती के माली तो हमी हैं, फूलों के ससार के भौरे तो हमी हैं। हम न करेंगे तो यह काम करेगा कौन ?

हमारी यह गुलाब की दुनिया—फूलों की दुनिया—रंगों की दुनिया—सुगन्धों की दुनिया—इतनी सुकुमार, इतनी नाजुक दुनिया है कि कहीं अर्थशास्त्रियों के हथौड़े और राजनीतिज्ञों के कुल्हाड़े उसका सर्वनाश न कर दें या प्रेमचन्द के शब्दों में—'रक्षा में हत्या' न हो जाय!

इसलिए, हमें ही यह करना है! उन्हें कुछ दूर-दूर ही रखना है।

× × ×

नई संस्कृति—नये समाज के लिए नई संस्कृति! किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि हम पुरानी संस्कृति के निन्दक या शत्रु हैं। पुरानी संस्कृति की सरजमीन ही पर तो नई संस्कृति की अट्टालिका खड़ी करनी है हमें!

पुरानी संस्कृति से हम प्रेरणा लेंगे, पाठ लेंगे। वह हमारी विरासत है, हम उसे क्यों छोड़ेंगे ?

किन्तु पुरानी संस्कृति नष्ट हो रही है, क्योंकि उसमें सड़न आ गई है—घुन लगा हुआ है। इसलिए, नई संस्कृति की रूप-रेखा नई होगी ही; नये साधनों को अपनाने से भी हम न हिचकेंगे।

हमारा उद्देश्य होगा, जीवन के हर सांस्कृतिक पहलू का इस प्रकार विकास करना कि हमारा सामाजिक जीवन स्वतन्त्रता, समता और मानवता के आधार पर पुनर्संगठित हो और वह सौन्दर्य एवं आनन्द को पूर्ण रूप से उपलब्ध कर सके।

हाँ स्वतन्त्रता, समता, मानवता! नई संस्कृति के आधार यो यही हो सकते हैं!

किन्तु इनका अर्थ हम सिर्फ राजनीतिक और आर्थिक अर्थों में नहीं लगाते। तीसरा शब्द मानवता हमारे उद्देश्य को स्पष्ट और पुष्ट कर देता है !

हम सारी दासताओं से—सारी विषमताओं से मानव को मुक्त कर उनके परस्पर के सम्बन्ध को विशुद्ध मानवता पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। क्योंकि हम मानते हैं कि तभी आदमी अपने जीवन में सौन्दर्य और आनन्द की उपलब्धि कर पायेगा।

सौन्दर्य और आनन्द! नई संस्कृति को इसी ओर चलना है, बढ़ना है !

आज के समाज में कुरूपता ही कुरूपता है, पीड़ाओं की विविधता है, बहुलता है। हम इसे सुन्दर बनायेंगे—हम इसे सुखी बनायेंगे।

लेखकों को, कवियों को, पत्रकारों को हम इकट्ठा करेंगे कि वे परस्पर विचार-विनिमय करके जनता के जीवन के अभावों और अभियोगों का सही चित्रण करें और साहित्य को उस पथ से ले चलें जिसके द्वारा जनता स्वतंत्र और पूर्ण जीवन का उपभोग कर सके।

इतना ही नहीं—जो कलाकार नाटक, संगीत, नृत्य और चित्रकारी में लगे हैं, उन्हें भी एकत्र करेंगे और उन्हें प्रोत्साहित करेंगे कि वे अपनी कलाकृतियों में जनता की इच्छाओं और आकाँक्षाओं को प्रतिफलित होने दें और सामाजिक जीवन को सौन्दर्यमय बनाकर उसे आनन्द से परिपूरित करें।

इस तरह हम उन सभी कलाकारों का आह्वान कर रहे हैं जो अपनी लेखनी या कूची, वाणी या वाद्यों द्वारा समाज को 'सत्य' 'शिवं' 'सुन्दरम्' की ओर ले जाने में लगे है किन्तु एक व्यापक संगठन नहीं होने के कारण जिनकी साधनायें इच्छित फल नहीं दे पा रही हैं।

इनका संगठन करके हम शहरों और गाँवों में ऐसे सांस्कृतिक केन्द्र खोलना चाहते हैं जिनमें उनकी कलाकृतियों का प्रदर्शन हो सके और जहाँ से नई संस्कृति का सन्देश भिन्न-भिन्न साधनों द्वारा हम देश के कोने-कोने में फैला सकें।

× × ×

हम बार-बार जनता पर जोर दे रहे हैं—क्योंकि हमने देखा है और दुख के साथ अनुभव किया है कि आज की संस्कृति कुछ अभिजात्य लोगों तक ही सीमित और परिमित है।

नया समाज जनता का समाज होगा, संस्कृति को भी जनता की संस्कृति होनी है।

नये समाज का भविष्य महान है; नई संस्कृति का भविष्य महान है।

अब तक की संस्कृति मानवता के सैकड़े एक का भी सही प्रतिनिधित्व नहीं कर पाती थी। जो सौ में सौ का प्रतिनिधित्व करेगी, वह कितनी बड़ी चीज होगी – कल्पना कीजिए।

कितनी बड़ी चीज़, कितनी रंग-बिरंगी चीज !

सौ में सौ की इच्छा-आकांक्षा, हर्ष-उल्लास, मिलन-विरह शौर्य-बलिदान, दया-क्रोध, पीर-रुदन का वह चित्रण और उनकी ही कलम या कूची, वाणी या वाद्य द्वारा।

सदियों से अवरुद्ध निर्झरणी जब एकाएक शैल शृंग से फूट पड़ेगी। युगों से पिंजर-बद्ध विहगी जब वन-विटपी की फुनगी पर पर तोलते हुए कलरव कर उठेगी।

कल्पना कीजिए, खुश होइए और आइए हमारे इस सदुद्योग में हाथ बटाइये।
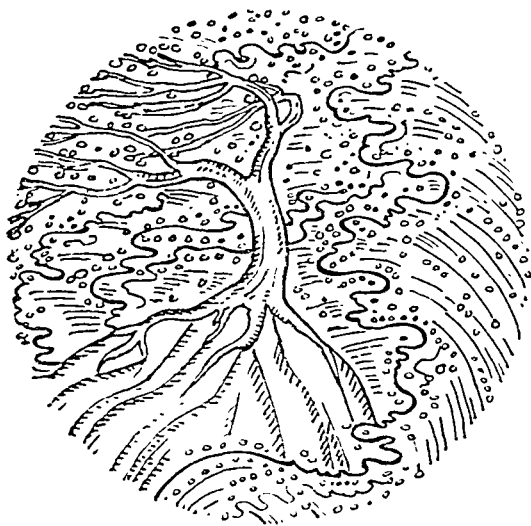
कुछ क्रान्तिकारी विचार

(बर्नार्ड शॉ के क्रान्तिकारियों के जेबीकोष से)

क्रान्तिकारी वह है जो तत्कालीन सामाजिक विधान को परित्याग कर नये की परीक्षा करना चाहता है।

जो ज़िन्दगी में खास महत्व प्राप्त करते हैं, वे सब के सब क्रान्तिकारी की हैसियत से ज़िन्दगी शुरू करते हैं। जो जितना महान होता है, वह ज्यों-ज्यों बूढ़ा होता है, उतना ही क्रान्तिकारी होता जाता है; यद्यपि लोग उसे कट्टरपंथी समझने लगते हैं, क्योंकि सुधार के प्रचलित तरीक़ों पर से उसका विश्वास उठता जाता है।

जो आदमी तत्कालीन समाज के विधान को समझते हुए भी अपनी तीस साल की उम्र के अन्दर क्रान्तिकारी नहीं बना तो समझो वह पूरा आदमी नहीं है।

× × ×

जिसमें ताकत है, वह करता है। जिसमें ताकत नहीं, वह उपदेश देता है।

विद्वान आदमी उस आलसी का नाम है, जो अध्ययन के जरिये वक्त बरबाद करता है। उसके झूठे ज्ञान से बचो, उसके ज्ञान से अज्ञान अच्छा।

ज्ञान तक पहुँचने की एक सड़क है—गलत कार्य।

× × ×

जो आदमी अपनी भाषा का मर्मज्ञ नहीं है, वह दूसरी भाषा सीख नहीं सकता।

× × ×

जिस तरह मृत्यु की क्षतिपूर्ति नहीं की जा सकती, उसी तरह कैद की भी क्षतिपूर्ति नहीं हो सकती।

मुजरिम कानून के हाथों नहीं मरता है—वह आदमी ही के हाथों मारा जाता है।

फाँसी की तख्ते पर की गई हत्या सब हत्याओं से बुरी है, क्योंकि यह हत्या समाज की स्वीकृति से की जाती है!

जुर्म वह खुदरा माल है, जिसके थोक माल का नाम है कानून।

जब तक जेलखाना कायम है, तबतक यह सवाल फिजूल है कि हममें से कौन उसके सेलों में है।

जरूरत सिर्फ यह नहीं है कि हम फाँसी पाये हुए मुजरिम को हटा दें। अब जरूरत यह है कि इस फाँसी पाये हुए समाज को ही हम हटा दें।

× × ×

प्राउधो ने कहा था—धन चोरों का माल है। इस विषय पर इससे ज्यादा सही बात कभी नहीं कही गई।

× × ×

उस आदमी से डरो जिसका भगवान आसमान पर रहता है।

× × ×

पाप से बचने का नाम पुण्य नहीं है। पुण्य वह है जिससे पाप की ओर प्रवृत्ति नहीं जाय।

× × ×

ज़िन्दगी का ज़्यादा से ज़्यादा उपयोग करने की कला का ही नाम किफ़ायतशारी है।

× × ×

बेवकूफ़ राष्ट्रों में प्रतिभाशील व्यक्ति देवता बना दिया जाता है—उसकी पूजा सब करते हैं; किन्तु उसके रास्ते पर कोई नहीं चलता।

× × ×

आनन्द और सौन्दर्य सहकारी पैदावार हैं।

खुशी और खूबसूरती सीधे बेवकूफ़ी तक पहुँचाती है।

सुन्दरी नारी से आजीवन आनन्द पाने की कामना ठीक वैसी ही है, जैसा हमेशा मुँह में शराब भरे रखकर उसका मज़ा पाने की चेष्टा करना।

बड़ा-से-बड़ा आनन्द ज़्यादा देर तक उपभोग किये जाने पर असहनीय पीड़ा पैदा करता है।

× × ×

जिसके दाँत में दर्द होता है, वह समझता है कि सभी अच्छे दाँतवाले सुखी हैं। ग़रीबी से परेशान आदमी धनियों के बारे में ठीक ऐसा ही सोचता है।

आदमी के पास उसकी ज़रूरत से ज़्यादा जितनी ही चीज़ें इकट्ठी होती हैं, उतना ही वह चिन्ता से चूर होता जाता है।

कुरूप और दुःखी संसार में धनी आदमी सिर्फ़ भद्दापन और तकलीफ़ ही ख़रीद सकता है।

बदशकली और बदबख़्ती से बचने के लिए धनी उन्हें और भी [illegible] देता है। महलों की एक-एक गज रौनक़ झोंपड़ियों की विभीषिका [illegible] वीवों में बढ़ा देती है।

× × ×

आज के जमाने में भला आदमी वह है जो बिना उपजाये ही उपभोग करे।

आधुनिक भद्रता के मानी है परोपजीविता।

भले आदमी के लिए देश का दुश्मन होना जरूरी है। लड़ाई में वह अपने देश की रक्षा के लिए नहीं लड़ता; बल्कि इसलिए लड़ता है कि कहीं उसके बदले कोई विदेशी उसके देश को नहीं लूटे। इन लड़ाकू लोगों को देशभक्त कहना वैसा ही है, जैसे हड्डी के लिए लड़नेवाले कुत्ते को पशुओं का हितैषी समझना।

यदि आप शिक्षा में, कानून में और शिकार में विश्वास करते है, तो सिर्फ थोड़ा धन मिल जाने से ही आप भले आदमी बन जायेंगे।

× × ×

आदमी अनुभव के अनुपात में नहीं, अनुभव ग्रहण करने के अनुपात में बुद्धिमान होता है।

सिर्फ अनुभव से ही बुद्धि आती, तो राजधानी की सड़कों के रोड़े सबसे ज्यादा बुद्धिमान होते।

× × ×

जवानी के सौ खून माफ हैं—लेकिन जवानी अपने को नहीं माफ करती। बुढ़ापा अपने को माफ कर देता है, लेकिन उसे माफ नहीं किया जाता।

जहाँ ज्ञान नहीं है, वहाँ अज्ञान विज्ञान का नाम पाता है।

स्वामित्व की उपार्जित भावना प्राकृतिक भावनाओं से ज्यादा मजबूत होती है।

उस आदमी से होशियार रहना, जो तुम्हारा घूंसे का जवाब नहीं देता। वह न तुम्हें क्षमा करता है और न तुम्हें यह मौक़ा देता है कि अपने को क्षमा कर लो।

दो भूखे आदमी एक भूखे आदमी से दुगुने भूखे नहीं हो सकते, लेकिन दो शैतान आदमी एक शैतान आदमी से दस गुना ज्यादा ज़हरीले हो सकते है।

विनाश को तभी अपनाया जाता है, जब वह उन्नति का बुर्का पहन लेता है।

सामाजिक समस्याओं पर माथापच्ची करना फिजूल है—ग़रीबों की एक ही समस्या है, वह है ग़रीबी; धनियों की एक ही समस्या है, वह है बेकारी !

रेलगाड़ी

फर्स्ट क्लास

(साहब)
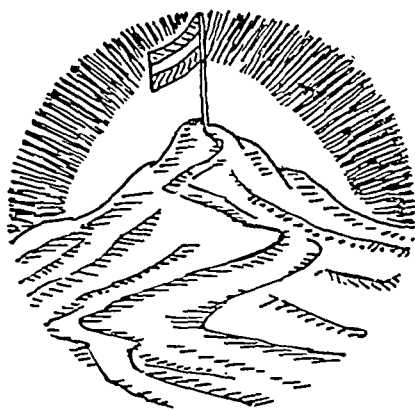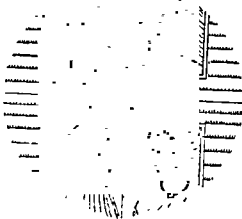
स्प्रिंगदार गद्दे—साफ-सुथरे। ऊपर बिजली के पंखे सायँ-सायँ कर रहे। रोशनी चमचमा रही।

एक बर्थ पर राजा साहब। सिर पर पगड़ी—सोलहवीं सदी के कट की। जवाहरात की कलँगी, एक बड़ा हीरा झलमल कर रहा। शरीर में अंगरखा—सुफेद, फेन की तरह। कन्धे पर, गले में, आस्तीन पर पड़ा 'शाल'। चूड़ीदार पाजामा। शानदार मखमली जूते।

दूसरे बर्थ पर सेक्रेटरी। चुस्त-दुरुस्त नौजवान।

(अन्तः)

लखनऊ ! साली भागी जा रही है।

वह—कैसी आग-भभूका ! कहीं ऐसी खूबसूरती होती है ? लेकिन 'वह' तो 'उससे' भी अच्छी – कितनी मासूम ? गाती भी है; गाना भी क्या बला है ? तान, ताल – जहन्नुम में जायँ ये चोंचले। लेकिन नहीं, गाना अच्छी चीज़ है, क्योंकि जब वह गाने लगती है, उसका चेहरा सुर्ख हो जाता, गाल गुलाब हो उठते हैं, गरदन लम्बी सुराहीदार हो जाती है और सीना....

'वह'—उसमें भी मजा है ! धन्य रे इन्सान, तूने भगवान को भी छकाया !

उँह...

यह फिजूल फिक्र। अभी मिल जायगा। सूद ज़्यादा देने पड़ेंगे, पड़ें। लोग कहते हैं, मैंने रियासत बेच दी। साली यह होती है किस दिन के लिए, कोई बेवकूफों से पूछे तो ?

लाट साहब—इन्टरव्यू।

हा हा हा —अब तो सुराजियों का राज हुआ है। ये गाँधी टोपीवाले ! कल तक साले मारे-मारे फिरते थे, भीख माँगते थे, आज नवाब के नाती बने हैं ! नहीं, हम उनसे मिल नहीं सकते ?। मिलना ?—उनसे ? अभी कितने दिन बीते, आये थे चन्दा माँगने ! कितनी देर धरनिया दिये रहे !

यह कौन स्टेशन है ? अरे, गाड़ी धीमी......

सेकेन्ड क्लास

(बाह्य)

डब्बा फर्स्ट क्लास की ही तरह; किन्तु कुछ घटिया—सेकेन्ड क्लास है न।

सेठजी बैठे हैं। सिर पर मारवाड़ी पगड़ी। हाथ में एक अंगरेज़ी अखबार, मानो उसको पढ़ने की कोशिश कर रहे।

एक कोने में उनका सामान धरा। मोटे-मोटे होलडौल। बड़ी-बड़ी पेटियां। बेंत के बने फलों के टोकरे। एक सुराही, चाँदी का ग्लास जिसके सिर पर।

उनके सामने के बर्थ पर एक सपत्नीक सज्जन।

(अन्तः)

देशी कारबारों के लिए यह अच्छा दिन है। कम्पनी चलकर रहेगी। न भी चले, अपने को तो कभी घाटा नहीं। और, घाटा हुआ भी तो ? जिस तरह आया, उस तरह जायगा।

एक लड़ाई ठन जाय ? इच्छा होती है, हिटलर के पास कोई सौगात भेजूं। लेकिन वह क्या करे बेचारा—दुनिया तो हिजड़ा हो गई, वह लड़े किससे ? अपने जानते उसने लड़ाई के लिए कुछ उठा रखा है ?

वाह री जर्मनों की वह लड़ाई—एक फूंक में पंचकौड़ीमल से मैं सेट करोड़ीमल बन गया ! हे युद्ध के देवता, कहाँ छिपे हो, इस धराधाम पर अवतार लो, अपने भक्तों की रक्षा करो !

हाँ, यह पिछला कौन शहर था ? यहाँ कोई धर्मशाला है ? लेकिन यहाँ धर्मशाला बनना किस काम का ? यहाँ अपना रोजगार होता, तो गाहक जुटाने में मदद होती, जिधर निकलता, तारीफें होती।

ये भलेमानस—क्यों बीवियों को साथ लिये फिरते हैं ? क्या यह अपने देश का धर्म है ? लेकिन, यह स्त्री है खूबसूरत ! बड़ी भोली ! एक मेरी भी सेठानी है !

लेकिन मेरी 'वह'—अप्सरायें तो देवताओं के घर में भी हैं ! उसके नजदीक यह चुड़ैल है ! पर नहीं—इसमें भी कुछ है !

राम, राम। यह अधर्म हुआ ! मैंने उस दिन गीता देखी थी, गोरखपुर की टीका। भगवान ने कहा है–मानसिक पाप...

भगवान.. हा हा ..

गाड़ी धीमी क्यों ?—हाँ, यह कौन स्टेशन है ?

इन्टर क्लास

(बाह्य)

बेंचों पर गद्दे—लेकिन, फटे, पुराने। पखा नहीं–रोशनी के दो धीमे बल्ब !

(अन्तः)

लखनऊ ! साली भागी जा रही है।

वह—कैसी आग-भभूका ! कहीं ऐसी खूबसूरती होती है ? लेकिन 'वह' तो 'उससे' भी अच्छी – कितनी मासूम ? गाती भी है; गाना भी क्या बला है ? तान, ताल – जहन्नुम में जायँ ये चोंचले। लेकिन नहीं, गाना अच्छी चीज़ है, क्योंकि जब वह गाने लगती है, उसका चेहरा सुर्ख हो जाता, गाल गुलाब हो उठते हैं, गरदन लम्बी सुराहीदार हो जाती है और सीना....

'वह'—उसमें भी मजा है ! धन्य रे इन्सान, तूने भगवान को भी छकाया !

उँह...

यह फिजूल फिक्र। अभी मिल जायगा। सूद ज़्यादा देने पड़ेंगे, पड़ें। लोग कहते हैं, मैंने रियासत बेच दी। साली यह होती है किस दिन के लिए, कोई बेवकूफों से पूछे तो ?

लाट साहब—इन्टरव्यू।

हा हा हा —अब तो सुराजियों का राज हुआ है। ये गाँधी टोपीवाले ! कल तक साले मारे-मारे फिरते थे, भीख माँगते थे, आज नवाब के नाती बने हैं ! नहीं, हम उनसे मिल नहीं सकते ?। मिलना ?—उनसे ? अभी कितने दिन बीते, आये थे चन्दा माँगने ! कितनी देर धरनिया दिये रहे !

यह कौन स्टेशन है ? अरे, गाड़ी धीमी......

सेकेन्ड क्लास

(बाह्य)

डब्बा फर्स्ट क्लास की ही तरह; किन्तु कुछ घटिया—सेकेन्ड क्लास है न।

सेठजी बैठे हैं। सिर पर मारवाड़ी पगड़ी । हाथ में एक अंगरेज़ी अखबार, मानो उसको पढ़ने की कोशिश कर रहे।

एक कोने में उनका सामान धरा। मोटे-मोटे होलडौल। बड़ी-बड़ी पेटियाँ। वें के टोकरे। एक सुराही, चाँदी का

हम सब जब ये कपड़ेलत्ते पहनेंगे, तो पड़ोसी खूब सिहायेंगे !
सिहाया करें——इसके लिए लोग अपना शौक-मौज छोड़ दे ?
उस दिन मिन्नू की माँ मुझे कितना प्यार करेगी ?
मैं उस दिन उससे एक गंडा चुम्मा वसूल करूँगा। क्यों न ?
वह——मेरे घर की लक्ष्मी !
किन्तु, आह ! अब कब उससे भेंट होगी ?
कब मिन्नू को गोद लूँगा ?
मेरी लक्ष्मी——मेरा मिन्नू !
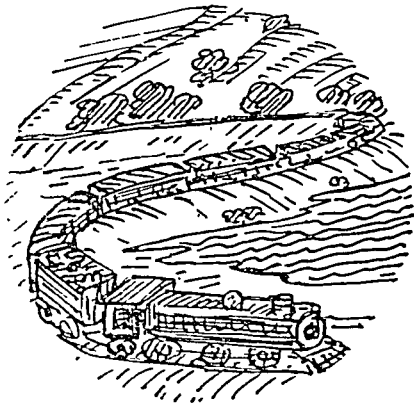
जवानी

हिन्दी के एक पुराने कवि ने जवानी की उपमा चढ़ती हुई नदी से दी है।

कितनी उपयुक्त है यह उपमा !

चढ़ती हुई नदी—

तीव्र प्रवाह—बड़ी-बड़ी नौकाओं को भी खतरे में डालनेवाला। जगह-जगह भीषण भँवर—जिनमें फँस कर बच निकलना मुश्किल ही नहीं, असम्भव। कीचड़ और खर-पात से गन्दा दीख पड़नेवाला पानी —किन्तु उसमें कितनी जीवनी शक्ति !

कगारे टूट-टूट कर गिर रहे हैं। बड़े-बड़े वृक्ष उखड़ कर अररा रहे हैं और तिनके की तरह बहे जा रहे हैं।

चढ़ती हुई नदी—मानो प्रकृति की खुली चुनौती !

लो, एक भीषण उफान आया। अब कगारे, किनारे कुछ दीख नहीं पड़ते। सहस्रमुखी हो नदी मानों संसार-विजय को निकली हो—

करोड़ों कगारों को धड़धड़ गिराती,
नावों व' गाँवों को सरसर बहाती,
पलक में ही नालों व खालों को भरती,
चली है नदी, नापती मानो धरती !

प्रकृति, सम्हलो !—तुम्हारी ही एक बेटी आज चंडिका बन चुकी है। मनुष्यो, बचो !—प्रकृति की एक पुत्री तुम्हें बताने आई है कि तुम कितने तुच्छ हो !

बाढ़ ! बाढ़ !!

× × ×

आज सुकुमारी घर से दीये लेकर निकली है। आँचल की ओट में वे कैसे झिलमिल कर रहे हैं।

सुकुमारी दीये लेकर निकली है !

आज गंगा-मैया उसकी कुटिया के निकट पहुँची हैं, दीपदान क्यों न दे ?

घर-घर से सहस्रों दीप आ रहे हैं !

तिनके के छोटे-छोटे बेड़े—बेड़ों पर कच्ची मिट्टी के दीये। एक के बाद एक—वे छोड़े जा रहे हैं। प्रकाश की एक लम्बी लड़ी के ऐसे वे तीव्र प्रवाह में भँसे जा रहे हैं !

कगारों को ढहानेवाला, वृक्षों को आमूल गिरानेवाला, नाश और महानाश का प्रत्यक्ष रूप—यह उद्दाम प्रवाह तिनके के तुच्छ बेड़े पर रखे कच्ची मिट्टी के इन क्षण-भंगुर दीपों को अपनी छाती पर रखे मानों दुलारा रहा है, नचा रहा है, खेला रहा है !

जहाँ तक देखो जगमग !

विनाश की मूर्ति का यह अर्घ्यदान धन्य ! अर्घ्यदान की ज्योति से जगमगाती यह विनाश की मूर्ति धन्य !

सरसर—सलमल !

× × ×

यह दीपदान क्यों न हो ?

दुनिया की जितनी बड़ी-बड़ी सभ्यतायें हैं, सब नदियों के किनारे ही तो पनपीं, बढ़ीं, फूलीं, फलीं, फैलीं !

संसार के जितने बड़े नगर हैं, सब नदियों के किनारे ही बसे हैं।

कला, कविता—सब का चरम विकास तो स्रोतस्विनी के पावन तट पर ही हुआ है ! वही स्रोतस्विनी जो अपनी 'चढ़ती' में इतना भयंकर मालूम पड़ती थी।

विध्वंस से घबड़ा उठने वालो ! ज़रा निर्माण के इस पहलू को भी देखो !

× × ×

तो, जवानी की उपमा चढ़ती हुई नदी से दी गई है।

जवानी—चढ़ती हुई नदी !

वहाँ जीवन—यहाँ जीवन ! जीवन में प्रवाह—दोनों ओर !

हहर-हहर कर बहने वाली नदी—हाहा-हूहू में मचलने वाली जवानी !

कितने अरमानों के भँवर हैं इसमें !

उच्छृंखलता का कैसा नग्न नृत्य है यहाँ ?

मैं सीमाओं को तोड़ूँगी, बंधनों को काटूँगी।

मैं संसार को छा लूँगी—उसपर अपना रंग चढ़ा कर छोड़ूँगी !

तुम्हारी हरी-भरी दुनिया डूबती है, डूबने दो, तुम्हारे शत-सहस्र वर्षों के परम्परा-वृक्ष उखड़ते हैं, उखड़ने दो !

. अजी, संसार आपादमस्तक हरा-भरा हो, इसके लिए कुछ हरे पौदों को खाद बनाना ही होगा। यह ठूँठ रूख गिरेगा नहीं, तो नये बिरवे पनपेंगे कैसे ! फिर नये भवन के लिए लकड़ियाँ भी कहाँ से आयँगी ?

× × ×

माँझी, अपनी नाव की खैर चाहते हो, तो हमारे प्रवाह का रुख समझो, सम्हलो ! नहीं तो तुम्हारी यह नाव डूबी !

बाढ़-बाढ़ मत चिल्लाओ !

चतुर और दूरदर्शी किसान की तरह अपने खेतों की मेंड़ें मज-बूत करो। यदि एक फसल बर्बाद भी हुई, तो यह ऐसी खाद दे जायगी कि दूसरी फसल में निहाल हो जाओगे !

सुन्दरियों से कहो—हमें अर्घ्यदान दें !

ओ हमारे ताण्डव-नृत्य पर भय-चकित होनेवाले क्षुद्र हृदय मानव जीवो ! हमीं शिव हैं, इसे क्यों भूलते हो ?

व्याघ्र का चालक, शृंगी का वादक, श्मशान का निवासी, उत्तुंग शिखर का प्रवासी वही वृपभ-वाहन, गणेश पिता, गौरी-पति अव-ढर दानी, शंकर, शिव भी है !

बोलो—शिवम् ! सत्यम्, ! सुन्दरम् !
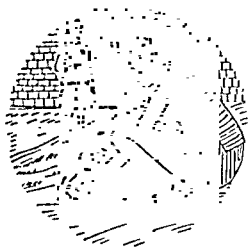
कलाकार

पटना जेल के सेल के निकट का वह वार्ड। आँगन में बड़ा पीपल का पेड़। पेड़ पर दो चार कीलें ठुकी हुईं। जिन्हें जेल से भी संतोष न हो, वे जरा अपनी हथकड़ियों को इन कीलों में लगाकर, ऊर्ध्वबाहु हो, झूले का मजा लें!

पानी का यह नल—नल के नीचे पक्के गच का, ईंट का बना विस्तृत 'टब' !

आँगन में बेले के कुछ पेड़—सूखे! हमने उनमें रस डालना शुरू किया। पहले पत्तियाँ निकलीं, फिर कलियाँ फूटीं। पटना का 'मोतिया' एक नामी चीज है न ? जेल का वह हिस्सा गमगमा उठा। रात में जब हम वार्ड में बन्द होते, खिड़कियों की राह चैत की चाँदनी में इन मोतियों का चिटखना स्पष्ट सुनते !

ज़रा वाहर जाकर इस चाँदनी में, इन वेलों की क्यारियों में घूम पाता ? आह रे—'वेला फूले आधी रात, गजरा केकर गले डालूँ ?' किन्तु, यहाँ तो गजरे पाने की कौन वात, देखने की इच्छा भी नहीं पूरी होती !

भोर होते-होते फूल भी ग़ायव ! जो अपने कर्कश वूट-रव से रात में सोना हराम करते, उनके 'सुर्ती-सनित' पाकेटों में पड़ कर वे जेल के वाहर पहुँच चुके होते !

× × ×

किन्तु, मैं वहक गया ! जिस तरह वकील साहव वनने की आकांक्षा करता हुआ 'गान्ही वावा का भोंटियर' वन गया था, जिस तरह सम्पादक वनने की इच्छा में हिन्दी-सम्पादन-संसार का पीर-ववर्ची-भिस्ती-ख़र यानी प्रूफ-रीडर, मैनेजर, कन्वासर, एडिटर आदि सव एक ही वार हो गया—उसी तरह आज भी वहक रहा हूँ।

× × ×

तो उस दिन एक छोटा-सा वच्चा लाया गया और उस सेल में रखा गया !

वच्चा छोटा-सा—और जेल नहीं, सेल में !!

एक दिन वह सेल के दरवाज़े पर पलथी मारे वैठा था—वड़ी ही विचित्र उदासीन मुद्रा में। मैंने उसे देख कर भी न देखा। अपने मोतिये में पानी डालने में लग गया कि वह दौड़कर मेरे निकट आया और खड़ा हो गया। कितना चपल ! उसकी आँखों से प्रतिभा टपक रही थी। मैं उससे कुछ पूछता ही कि वार्डर गरज उठा—'इससे मत वोलिये वावू, साला गिरहकट्ट है; कई वार आ चुका।'

वच्चा वेशर्म-सा खिलखिला पड़ा ! वोला—'नहीं सुराजी वावू, ये तुहमत लगाते हैं। मैं कव आया था यहाँ सिपाहीजी ? वह दूसरा होगा कोई साला; मुझे वेकसूर पकड़ा गया है।' फिर कानों में कुछ सट कर फुस-फुसाया—सुराजी वावू, ज़रा हलवा दीजियेगा ?'

मेरी उसकी दोस्ती हो गई।

वह सेल से छूटते ही मेरे पास दौड़ आता। हलवा लेकर खाता और गप्पें करने लगता। मैं जानना चाहता था कि वह कौन

है, क्या करता था, जेल में क्यों लाया गया ? किन्तु वह तो प्रतिदिन बातें बदलता। इतना-सा छोटा बच्चा, इतनी शरारत कहाँ से आई इसमें ?

एक दिन, दुपहरिया में, पीपल के पेड के निकट बैठा वह खेल रहा था। खेलता क्या था, कुछ बनाने में मस्त था। मैं दबे पाँव गया। अरे, यह तो विचित्र ......

लाल सुर्खी, उजले चूने और हरी दूब के संयोग से, जमीन पर जैसे कारचोबी के काम कर दिये हो उसने ! और, उसके बीच में सुन्दर नागरी हरूफों में लिखा है—पिअरिया !

'अरे, तू पढ़ा-लिखा भी है ?'

मुँह बना, सिर हिला, उसने हामी भरी !

'यह पिअरिया कौन है ?'

अब उसकी आँखें सुर्ख थीं। फिर छलछला उठी। अपने को जैसे वह रोक न सका हो, भूत-सा बकने लगा।

वह कहने को किसी भगी का बेटा है। माँ हैजे में मर गई। बाप चोरी में पकडा गया, तब से न लौटा। पिअरिया उसी की बहिन है-उससे बडी। बहिन ने कोशिश की कि वह म्युनिसिपल स्कूल में पढ़े। किन्तु फीस और किताबों का अभाव; उसपर आये दिन उपवास का निमत्रण !

इतने में एक 'दोस्त' मिल गये—ठीक उस दिन जब कि कई शाम का भूखा वह स्टेशन पर मारा-मारा फिर रहा था।

'दोस्त' जी ने इसे 'जेब-कतरन-कला' सिखलाई।

कैसा मज़ा—चुपके-चुपके एक बच्चा टिकट कटाते समय आपके निकट आ खड़ा हुआ या रेल के डब्बे में बगल में आ बैठा। आप लापरवाह हैं, बच्चा अपनी घात में। टिकट की खिड़की से आपके हटते ही वह हट गया। क्या यों ही, नहीं जनाब, आपकी जेब सहित ! आप इधर कई स्टेशन जाने पर जब पान-सिगरेट के लिए पैसे निकालने लगे, घबराये, चिल्लाये। और वह 'दोस्त' के निकट पहुँचा, थैली उसे दी। माल उसने रख लिया। बच्चे को मिले—पूरी-जलेबी, पान सिगरेट, सिनेमा-थेटर ! कुछ पैसे बहिन के लिए भी !

लड़का चालाक—मैं कहूँ प्रतिभाशील ! मेहनत करूँ मैं, पैसे पायें 'दोस्त', यह क्यों ? 'दोस्त' कहते—अरे, दारोगाजी को भी हिस्सा देना होता है न ? झगड़ा हुआ—बच्चे ने स्वतंत्र पेशा अख्तियार किया; किन्तु उसी दिन पकड़ लिया गया। बच्चा कह रहा था मुझसे—'साले 'दोस्त' ने पुलिस से मिल कर पकड़वाया है बाबू ! अच्छा बच्चू को मैं फँसाऊँगा ।'

मुश्किल से ११-१२ वर्ष का बच्चा है। इतनी अक्ल ! फिर उसकी यह कारीगरी ! मेरी आँखों में सुर्खी-चूने से बने कारचोबी के काम चमचमा उठे।

'अरे, तुझे तो आर्ट-स्कूल में पढ़ना चाहिए !' मैंने कहा—'इन शैतानियों को छोड़ बाहर जाकर पढ़ना-लिखना शुरू करना।'

वह हँसा ! फिर बोला—'बहिन भी पढ़ने को ही कहती थी सुराजी बाबू ! किन्तु, क्या किया जाय, आप ही कहिए ? फीस तो माफ है। किताबें तो चाहिए ही ; फिर पेट भरने पर ही तो अक्षर सूझते हैं।' वह संजीदा-सा होकर बोला—'पढ़ना-लिखना तो बड़े लोगों का काम है, बाबू।'

'और तुम्हारा काम है जेल जाना ?'

"जेल भी कोई बुरी चीज़ नहीं—खाने को ठीक समय पर मिल जाता है। ...लेकिन बहिन की याद आती है........!'

उसकी आँखें फिर उमँड़ आईं !

× × ×

मैं कभी सुर्खी, चूना, दूब से बने उस चित्रकारी की ओर देखता, कभी उसके मुंह की ओर ! मेरे दिमाग़ में हाहाकार मचा था !

और उस हाहाकार को द्विगुण कर दिया एक और घटना ने।

× × ×

जेल से छूट कर गंगाशरण की माँ को प्रणाम कर आना ज़रूरी ही था।

गंगा के गाँव में एक छोटा-सा जंगल है—जंगल का 'पाकेट एडीशन' कहिए। हमलोग वहीं बैठे थे। माघ बीत रहा था। फगुनहट

लड़के दिमाग में गरमी भर रही थी। वृक्षों पर बैठी बुलबुल इतने जोर से चहक रही थी मानो भंग पी ली हो। कुछ और चिड़ियों के स्वर की सवारी पर चढ़ जब-तब कोयल की कूक भी सुनाई पड़ती थी। ईरान और हिन्दुस्तान का यह सांस्कृतिक सम्मिलन था।

कि इतने ही में—

'छोटे-मोटे सैयाँ हो।'

जंगल की एक ओर से आवाज़ आई। स्वर में इतना सुरीलापन था कि समूचा जंगल गूँज-सा उठा। श्यामनन्दन बाबा ने कहा—'वह आ गया! लकड़ी तोड़ने आया होगा, मैं बुला लाता हूँ, सुनो उसका गाना!'

दौड़े गये वह और एक छोटे-से बच्चे को कंधे पर टाँगे ले आये। बाबा ठहरे—हमलोगों के सार्वजनिक बाबा। बच्चे के हाथ में अब भी एक सूखी टहनी थी।

उसे बीच में बैठाया गया। वह गाने लगा। गाने निस्सन्देह ही ग्रामीण रुचि के पोषक थे, किन्तु उसका गाना!

स्वरों का चढ़ाव-उतार, आवाज़ का कम्पन और दर्द, कंठ का वह सुरीलापन—एक समाँ-सा बँध गया। मालूम होता था, संगीत साकार होकर वहाँ चारों ओर उड़ रहा हो। थोड़ी देर के लिए मालूम हुआ जैसे बुलबुल चुप हो गई हो, कोयल शरमा गई हो, दूसरी चिड़ियाँ आश्चर्य-चकित हो रही हों।

'बाबा, यह है कौन?'

'अरे, यह है, सो है। क्या पूछो हो, लड़के?'

मालूम हुआ, एक अनाथ बच्चा है—हाँ, माँ बची है। किन्तु, माँ के रहते भी तो अनाथ ही है। पिता इसके नामी गवैया थे। पैसे भी कमाये, किन्तु खर्चीले—कफन के लिए भी छोड़ कर नहीं मरे। बड़ी मुश्किल से दिन कटते हैं—यह बच्चा जब-तब जलावन तोड़ने इस जंगल में आता है।

'क्यों न इसे उच्च संगीत की शिक्षा दी जाय, गंगा?'

'क्यों न हमें स्वराज्य मिल जाय, हज़रत !'

'जरा ज़मीन पर पैर रख के बतिआइए, बेनीपुरीजी !'—यह रामचन्द्र ने कहा !

× × ×

कला और कलाकार की जब चर्चा सुनता हूँ, दोनों बच्चे आँखों के निकट घूमने लगते हैं।

एक जेल की हवा खा रहा था—दूसरा लकड़ियाँ तोड़ रहा था। हमारे रविवर्मा, हमारे तानसेन जेलों में सड़ते हैं, इंधन के गट्ठर ढोते हैं।

और, उसी समय अपने दो मित्र-तनयों की याद आती है। एक ७५) महीने खर्च कर शांति-निकेतन में फ़कत लकीरें खींचा करते हैं, दूसरे ५०) मासिक एक संगीतज्ञ पर खर्च कर जब-तब भोर की मेरी अनमोल नींद हराम करते हैं।

दीप-दान

एक

'बिटिया, यह क्या कर रही है ?'

वह गीली मिट्टी और पतली अँगुलियों के संयोग से छोटे-छोटे दीपों की रचना कर रही थी। अपने काम को जारी रखती, मेरी ओर मुँड़ कर मुस्कराती हुई बोली—

दीये बना रही हूँ; आज दिवाली है न ?

'हाँ, आज अमावस्या है। कहाँ वह घन-अंजन अन्धकार और कहाँ मिट्टी के ये छोटे दीये !'

किन्तु शायद दुस्साहसिकता पर ही तो संसार कायम है।

× × ×

लोग कहते हैं, यह लक्ष्मी की तिथि है। मैं कहता हूँ, यह शक्ति की तिथि है—वैसी शक्ति, जो प्रकृति पर भी विजय प्राप्त करने की हिम्मत रखती है।

प्रकृति कहती है—आज अन्धकार रहेगा, मेरा यही आदेश है, मेरा यही नियम है।

मनुष्य की अन्तर्हित शक्ति गरज उठती है—नहीं, आज यहाँ उजाला रहेगा, प्रकाश रहेगा, मेरा यही प्रयत्न है। तेईस अमावस्या तेरी, एक अमावस्या मेरी।

युग-युग से प्रकृति और मनुष्य का यह संग्राम जारी है। अभी तक किसीने हार नहीं मानी।

× × ×

वहनें दीप जला रही हैं—या दीपों की माला से घर-आँगन जगमगा रही हैं। जगमगा रही हैं और गुन-गुनाकर कुछ गा रही हैं।

भाई खर-पात के मशाल वना, हमजोलियों की टोलियाँ वाँध, गाँव के वाहर खेत और सरेह में हाहा-हूहू मचा रहे हैं।

घर-वाहर गाँव-सरेह सवमें उजाला है।

अन्धकार का राज्य तभी दूर होगा, जव घर में वहनें और वाहर भाई—दोनों तुल पड़ें। घर में वहनें दीप सजा रही हों, वाहर भाई मशालें लिये दौड़ रहे हों। वहनें गुनगुना रही हों, भाई हाहा-हूहू कर रहे हों।

× × ×

ये दीपक, ये पतंगे !

एक हँस रहा है, दूसरा जल रहा है।

हम वैठे कवितायें वनाते हैं।

शायद दुनिया इसीका नाम है।

कोई हँसे, कोई जले, कोई इन दोनों का आनन्द ले !

× × ×

आज लक्ष्मी आने वाली है।

क्या लक्ष्मी का प्रवेश अन्धकारमयी निशि में ही हुआ करता है? क्या लक्ष्मी को अन्धकार से प्रेम है?

उल्लू पर जो सवार है, उसके लिए कृष्ण-निशा से बढ़कर कौन तिथि हो सकती है?

× × ×

स्नेह में खून न दो—लोगों को कहते सुना है।

'स्नेह' और 'खून' के संयोग से ही दीपावली मनती है—अपनी आँखों देखा है।

कान का विश्वास करें या आँख का?

शायद सत्य इन दोनों से परे है।

× × ×

उनके घर में शायद आज घी के चिराग जल रहे हैं!

इस घी के लिए कितने मूक प्राणियों ने अपने खून को दूध के रूप में परिणत किया होगा, कितने बच्चों के मुँह का आहार छिन गया होगा, कितनी कोमलांगियों के हाथ मथानी के चक्कर में घिस गये होंगे!

अफसोस, यदि वे इन बातों को सोच सकते—समझ सकते!

× × ×

दो

बाहर चकमक-चकमक, भीतर अजनोपम अन्धकार! दरवाजे पर केले के खम्भों की हरीतिमा, आँगन में सड़ी हुई मोरियों की गन्ध! कहीं मिठाइयों की लूट, कहीं टुकड़ों पर क्षुधित दृष्टि! कहीं चौसर की बाजी, कहीं जीवन का दिवाला! हम आज इसे ही दिवाली कहते हैं न?

× × ×

माँ आज अपने घर दीये नहीं जलेंगे?'

माँ चौंकी! चिकनी मिट्टी सानी! दीये गढ़े। अंचल से चीथड़े फाड़ कर बत्ती बनाई।

किन्तु तेल?

माँ की आँखें छलछला उठीं—बरस पड़ीं। सामने पड़े दीये उनसे भर चले। फिर गिली मिट्टी के इन स्नेह-पात्रों को मिट्टी के रूप में परिणत होते कितनी देर लगती?

बच्चा माँ का मुँह देख रहा है।

किन्तु माँ ?

× × ×

जिस दिन हमने दिवाली का पर्व मनाना प्रारम्भ किया, उसी दिन हमारे घर में 'दिवाला' नामक शिशु का जन्म हुआ !

× × ×

लक्ष्मी जब पूजन और प्रदर्शन की चीज़ बन जाय, उपभोग और उपयोग की चीज़ नहीं रहे, समझिए, उसी दिन वह 'काली' बन गई? तब वह रक्त पीती है—मानव रक्त !

× × ×

बाँस की कोपलों पर लिपटे सूखे छिलकों को कमाँची में गाँथ-गुँथ कर लुकाठी बनाये गाँव की सड़कों पर अग्नि-लीला दिखाने वाले नटराजो ! देखो, कबीर बाबा तुम्हें एक दोहा सुना रहे हैं; क्योंकि वह भी तुम्हारे-से ही खिलाड़ी हैं—भले ही वह बूढ़े हों।

वह क्या कह रहे हैं, सुनो—

'कबिरा खड़ा बजार में लिये लुकाठी हाथ,

जो घर फूँके आपना, चले हमारे साथ।'

जाओगे उनके साथ, प्रकाश-पुंज को खेलवाड़ समझनेवाले ओ नटराजो !

× × ×

दिवाली की रात के आखिरी प्रहर में हमारी बूढ़ी मातायें उठीं और सूप को सनई की डंटल से पीट-पीट कर हमारे घर से दरिद्रता को भगाने का मन्त्रोच्चार करने लगीं।

भला, इतने पर भी हमारे घर में दरिद्रता क्यों रह पाती ?

वह भागी, किन्तु.........

वह भागी, किन्तु हमारे खेतों और खलिहानों में ही उसने अपने अचल आसन जमा दिये। भला उसके लिए भी तो कहीं जगह चाहिए ही ?

× × ×

महलों पर जगमगाते दीप-मालिकायें देख, वह बोल उठे—वाह!

किन्तु मैंने ज्यों ही उस ओर नजर की, मेरी आँखें झिप गईं।

मेरी पगली पुतलियों ने कुछ विचित्र ही दृश्य देखा—

मनुष्य की खोपड़ी को काट-कूटकर दीये बनाये गये हैं, उनमें उनका हृदय-रक्त भर दिया गया है, उनके अरमानों की बत्ती बनाई गई है, जो बिना दियासलाई छुलाये ही निर्धूम जल रही है!

लोगों ने देखा—चकमक! चकमक!

मेरी पगली पुतलियों ने मुझे दूसरा ही दृश्य दिखाया।

× × ×

आज झोंपड़ी को भी दिवाली मनाने की सूझी है!

आखिर मजार पर भी तो दीये जलाये जाते हैं!

× × ×

अभागे, यह नन्हा दीपक सजाना तुझे क्या भाया?

जिसके चाहनों ने तेरी यह दुर्गत की, उसीकी अभ्यर्थना!

यदि प्रकाश ही चाहता है, तो इस झोंपड़ी में ही चिनगारी छुला देख।

दो घड़ी को कैसी जगमगाहट रहेगी!

और, यदि कहीं इसकी लपटें महलों की ओर भी बढ़ सकीं......